
चन्दामामा
मां-बच्चों का मासिक पत्र



दूसरे दिन युद्ध में यदि पूर्वान्ह में भीम ने अपना पराक्रम दिखाया, तो अपरान्ह में अर्जुन ने।

अपनी सेना का यो संहार होता देख, कौरव वीर, अश्वत्थामा, कृपा, शल्य ने मिलकर धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा के रथ के घोड़ों को मार दिया। अश्वत्थामा तुरन्त शल्य के रथ पर चढ़कर फिर युद्ध करने लगा। यह देख अभिमन्यु को जोश आया। वह आकर उनसे लड़ा।

इतने में कौरवों की तरफ से दुर्योधन के लड़के, लक्ष्मण ने अभिमन्यु से मुकाबला करना शुरु किया।

यह मौका देख कौरव पक्ष के क्षेद्धाओं ने अभिमन्यु को घेर लिया। अभिमन्यु जब उनका सामना कर रहा था, तो अर्जुन इस तरह आया, जैसे शिव अपनी तीसरी आँख खोलकर आ रहे हो, और अपने बाणों से कौरव सेना का नाश करने लगा। दावाग्नि के कारण, जिस प्रकार जङ्गल राख दो जाते हैं, उसी प्रकार कौरव सेना अर्जुन के बाणों का शिकार होने लगी।

उस समय, अर्जुन की वीरता देखकर कौरव सेना के प्रति महायोद्धा को भय हुआ, क्योंकि उनमें से कोई भी उसका मुकाबला करने न आया। फौरव सेना तितर-बितर हो इधर-उधर भागने लगी। कृपा और अर्जुन ने शंख बजाये।

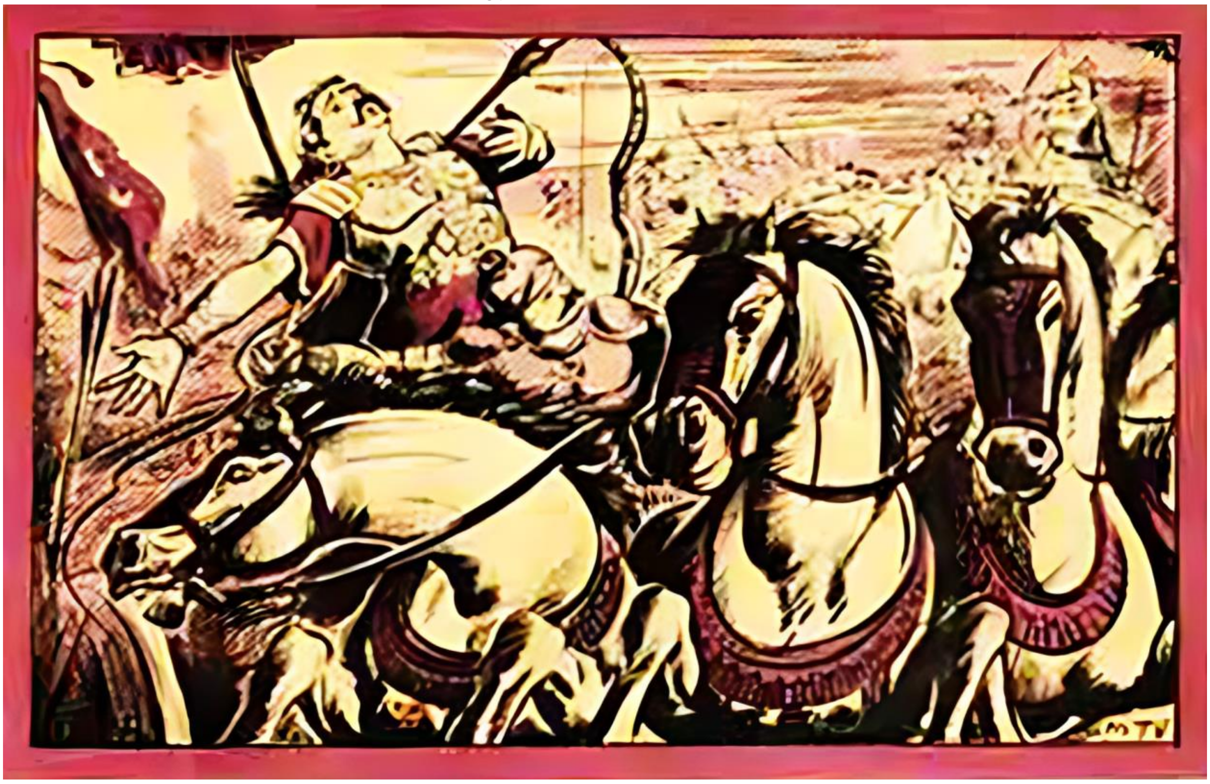
भीष्म ने अपनी सेना को भागता देख कुछ न किया और द्रोण से कहा-"अर्जुन अब अपनी पूरी शक्ति से युद्ध कर रहा है। इस समय उसका कोई भी सामना नहीं कर सकता। अब

अपनी सेना को भी वापस नहीं बुला सकते। अभी थोड़ी देर में सूर्यास्त होनेवाला है। इसलिए आपके लिए युद्ध स्वतम कर देना ही उचित मालूम होता है। भयभीत सेना तो युद्ध कर नहीं सकती।"

अगले दिन प्रातः तीसरे दिन का युद्ध आरम्भ हुआ। कौरव सेना, गरुड़ व्यूह और पाण्डव सेना अर्धचन्द्र व्यूह में व्यवस्थित हुई।

आज का युद्ध मानों, मुक्कामुक्की से शुरु हुआ। पाण्डवों की तरफ से अर्जुन, भीम, घटोत्कच, सात्यकी, चेकितान, उपपाण्डव पराक्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे। पटोत्कच का प्रताप तो भीम से भी कहीं बढ़कर मालूम होता था।

दुर्योधन साथ हजार रथ लेकर घटोत्कच से युद्ध करने आया। भीम और घटोत्कच ने उनका मुकाबला किया। भीम ने दुर्योधन पर एक बाण छोड़ा। बाण की चोट से दुर्योधन मूर्छित-सा हो गया। उसका सारथी उसके रथ को वापस ले गया। यह देख कौरव सेना भागने लगी। भीम ने उसका पीछा करते हुए उन पर बाण वर्षा की। और एक तरफ अर्जुन, अभिमन्यु,



सात्यकी, कौरव सेना को तहस नहस कर रहे थे। बहुत मुश्किल से भीष्म और द्रोण अपनी सेनाओं को पीछे हटा पा रहे थे। इतने में दुर्योधन को होश आया। वह पीछे भागते सैनिकों को फिर लड़ने लिए भेजने लगा।

उसने भीष्म के पास जाकर कहा- "दादा, यह कितने अपमान की बात है कि तेरे जीवित रहते हमारी सेना मैदान छोड़कर भाग रही है। मैं तो यह सोचता आ रहा था कि पाण्डवों में तेरा, द्रोण और अश्वत्थामा का मुकाबला करनेवाला कोई नहीं है। या पाण्डवों पर प्रेम होने के कारण तुम अपनी सेना का नाश होता हुआ देखकर भी यो तटस्थ से बैठे हो! अगर यही बात थी, तो युद्ध से पूर्व ही, मुझे जो यह बता देते! अगर तुम और द्रोण मुझे मञ्झधार में नहीं डूबाना चाहते हो, तो पूरे जोर से युद्ध कीजिये।"

यह सुन भीष्म को गुस्सा आ गया। "क्यों, मैंने तुमको पहले नहीं कहा था कि पाण्डवों को जीतना देवताओं के भी बस की बात नहीं है। मैं बूढ़ा हूँ। फिर भी अपना पराक्रम दिखाता हूँ।" यह सुन



दुर्योधन खुश हुआ। खुशी में वह शंख बजाने लगा। भेरियाँ बजाई गई।

दुपहर के बाद भी भीष्म अपने प्रताप की अग्नि में पाण्डव सेना को ईन्धन बनाने लगा। दुर्योधन ने भीष्म की मदद के लिए एक बड़ी सेना भेजी। उस दिन भीष्म ने जो संहार किया, वह वर्णनातीत था।

पाण्डव सेना तितर बितर होकर भागने लगी। जहाँ देखो, वहाँ हाहाकार।

कृष्ण ने अर्जुन के रथ को एक जगह रोक कर कहा-"अर्जुन! कभी तुमने शेखी बघारी थी कि सारी कौरव सेना का भीष्म और द्रोण को भी मिलाकर, सर्वनाश कर दोगे। अब यह करके दिखाने का समय आ गया है। देखो, तुम्हारी सेना को भीष्म किस प्रकार खदेड़ रहा है, जैसे शेर छोटे मोटे जानवरों को खदेड़ रहा हो। अगर तुम वचन देकर मुकरनेवाले नहीं हो, तो तुम्हें भीष्म का अब खातमा करना होगा। रथ को भीष्म के सामने ले जाओ।" अर्जुन ने कहा।

शीघ्र ही भीष्म और अर्जुन एक दूसरे का मुकाबला करने लगे। यह देख पाण्डव सेना का धीरज बँधा। यह भी लड़ने लगी।

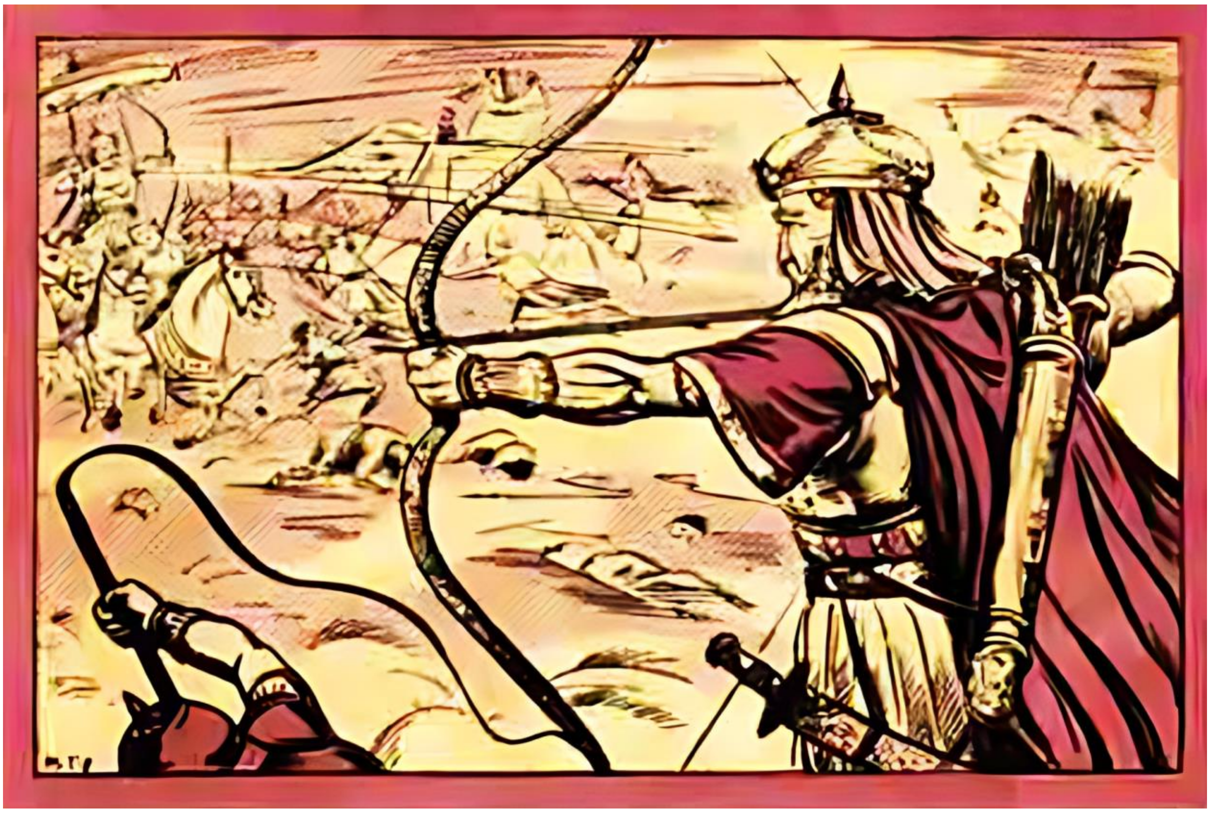


भीष्म भयङ्कर युद्ध कर रहा था। उसने अपनी बाण वर्षा से बढ़ते अर्जुन को ढक-सा दिया। परन्तु अर्जुन ने लगातार दो बार भीष्म के हाथ के बाण को अपने बाणों से तोड़ दिया। "अर्जुन, वाह, जैसे तुम्हें लड़ना चाहिये, बैसे लड़ रहे हो। इसी तरह लड़ते जाओ।" कहकर भीष्म और जोर से युद्ध करने लगा। उसने सारथी कृष्ण पर भी तेज बाण छोड़े।

जब कि भीष्म पूरे जोश से लड़ रहा था, कृष्ण को लगा कि अर्जुन, जरा हट हटकर, हिचक हिचककर युद्ध कर रहा था।

उसने सोचा, अगर इसने इस प्रकार युद्ध किया तो युधिष्ठिर की सेना नहीं बचेगी। भीष्म को क्योंकि वह गौरव की दृष्टि से देखता है इसलिए वह शायद भूल गया है कि उसको मारने की जिम्मेवारी भी उस पर है। इस भीष्म को मैं ही मरवाऊँगा।

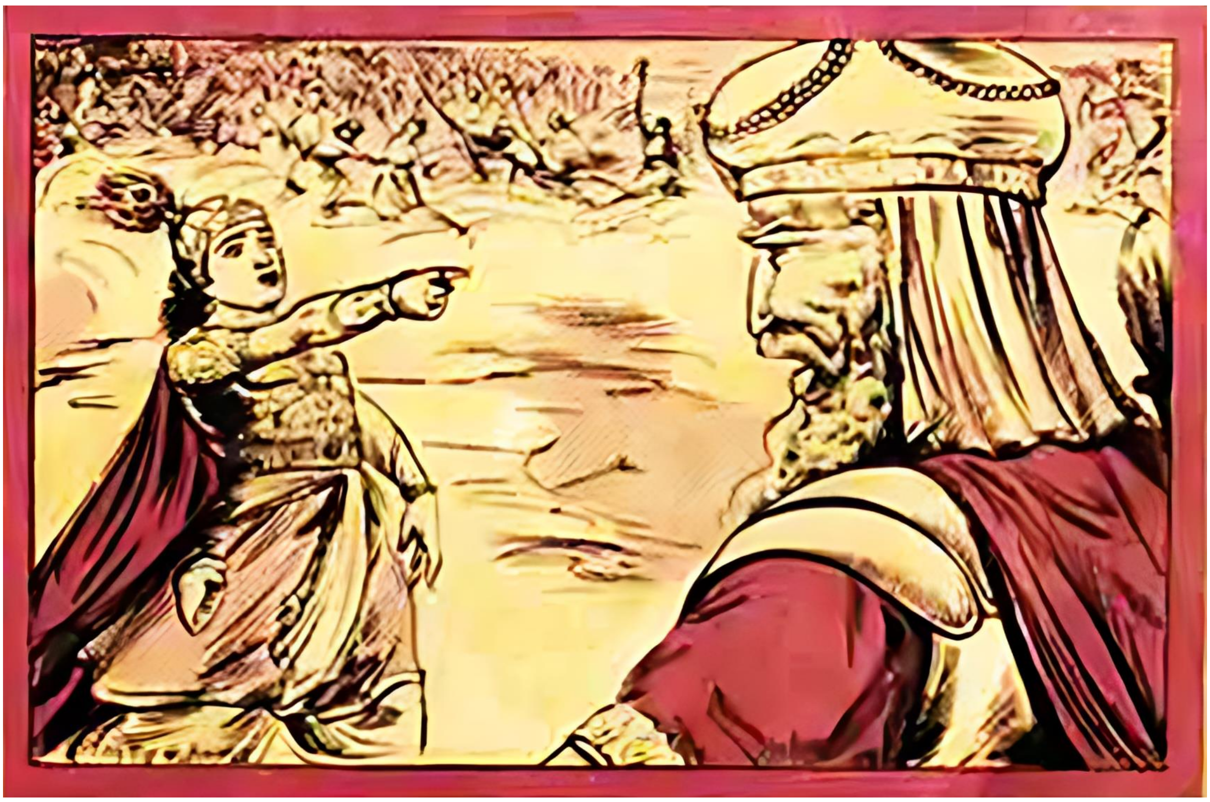
इतने में कृष्ण ने देखा कि कौरव सेना, पाण्डव सेना का इस प्रकार शिकार कर रही थी, जैसे वे कोई हरिणों के झुण्ड हो। सात्यकी ने उन्हें सम्बोधित करके कहा- "सैनिको! योद्धाओ! यूँ भागो मत। यह क्षत्रिय धर्म नहीं है।"



कृष्ण को गुस्सा आ गया । उसने सात्यकी से कहा-"जो डरकर भाग रहे हैं, उनको भागने दो। बाकी भी अगर भागना चाहें तो भागने दो। मैं अकेले ही अपने पराक्रम से भीष्म और द्रोण को मारकर, युधिष्ठिर को विजय श्री दिलवाऊँगा, और उसका राज्यभिषेक करवाकर ही चैन लूँगा।" यह कहकर कृष्ण ने अपने हाथ से लगाम छोड़ दी। सुदर्शन नाम के अपने चक्रायुध को लेकर, रथ से उतरकर भीष्म के रथ की ओर जाने लगा।

भीष्म न घबराया। उसने कहा- "कृष्ण! मुझे मार दो। अगर तुम्हारे हाथ मारा गया, तो मुझे यह लोक तो मिलेगा ही परलोक भी प्राप्त होगा। मैं समझूँगा कि तुम मेरा आदर कर रहे हो।"

कृष्ण ने कोपाविष्ट हो कहा-"अरे बूढ़े! तुम ही इस संहार के कारण हो। आज तुम दुर्योधन का उद्धार करने आये हो। परन्तु उस दिन जब कि तुम्हारे राजा ने धोखे से जुये में पाण्डवों को हरा दिया था, तब तुमने उसके मन्त्री होते हुए भी क्यों नहीं उसे समझाया



था? मान लो, अगर वह तुम्हारी तब बात न सुनता तो तभी तुमने उसे क्यों नहीं छोड़ दिया था?"

"राजा आश्रितों के लिए दूसरा भगवान जो है।" भीष्म ने कहा।

उस कंस की क्या हालत हुई थी, जिसने यादवों की बात न मानी थी? जो राजा उचित मार्ग पर न हो, क्या उसको दण्ड देना कर्तव्य नहीं है?" कृष्ण ने फिर पूछा।

इस बीच अर्जुन रथ से उतर कर आया। उसने कृष्ण को जोर से पकड़ लिया। परन्तु गुस्से के जोर में कृष्ण अर्जुन को दस अंगुल खींच ले गया। तब अर्जुन ने कृष्ण को रोक कर कहा-"भगवान, शान्त हो। पाण्डवों के लिए तेरे सिवाय और कौन सहारा है? मैं अपने भाइयों और बाल-बच्चों के नाम शपथ करता हूँ कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके रहूँगा। कौरव वंश का नाश करके रहूँगा।"

तब तक कृष्ण शान्त हो वापस अपने रथ में जाकर यथास्थान बैठ गया था। उसके बाद अर्जुन ने पूरे जोर शोर से युद्ध किया। उसने पहली बार सारी कौरव सेना से युद्ध ही न किया, अपितु ऐन्द्रास्त्र का उपयोग भी किया। उसके प्रभाव से कौरव सेना खटमलों की तरह छटपटाकर मरने लागी। भीष्म और द्रोण को ही लगा, जैसे प्रलय आ गई हो। कौरव सैनिक और क्या करते, वे युद्ध-भूमि छोड़कर जाने लगे। उस दिन अर्जुन ने कौरव सेना के दस हजार रथ, सात सौ हाथी आदि नष्ट कर दिये। कौरव सैनिक जब मशालों की रोशनी में अपने शिपिर की ओर जा रहे थे, तो वे अर्जुन के पराक्रम के विषय में ही बातें कर रहे थे।





[१८]

[शिवपुर के पास चन्द्रवर्मा और धीरमल्ल मिले। एक पहाड़ी की चोटी में उनका सर्पकेतु से मुकाबला हुआ। दोनों की सेनाओं में भयङ्कर युद्ध हुआ। सर्पकेतु के कुछ सैनिक चन्द्रवर्मा की ओर आ गये। सर्पकेतु बाकी सेना लेकर भाग निकला। चन्द्रवर्मा ने उसका पीछा करने के लिए कुछ सैनिकों को भेजा। बाद में--]

दिन काफी ढल गया था। चन्द्रवर्मा के भेजे हुए दो सैनिकों ने वापस आकर बताया कि सर्पकेतु की सेना तो नहीं दिखाई दी, पर उनके पद चिन्ह दिखाई दिये, जिनसे जाना जा सकता था कि वे पश्चिम दिशा की ओर गये हैं।

यह सुनते ही चन्द्रवर्मा ने धीरमल्ल की ओर मुड़कर कहा-"धीरमल्ल मेरा ख़याल है कि सर्पकेतु महिष्मति नगर की ओर न जाकर काँसे की किले की ओर जा रहा है।"

सेनापति धीरमल्ल और सुबाहु का भी यही ख़याल था। पर उनके सामने अब यह समस्या आ पड़ी थी कि वे महिष्मती नगर की ओर जायें, या सर्पकेतु का पीछा करते हुए काँसे के किले की ओर। थोड़ी देर सोचने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि काँसे के किले की ओर जाकर वहाँ सर्पकेतु को मार देना ही उत्तम था।



तुरन्त पश्चिम दिशा की ओर जाने के लिए सैनिकों को सन्नद्ध होने के लिए कहा गया। थोड़ी देर में सारी सेना कूच करने लगी। वे सर्पकेतु की सेना के पदचिन्हों को देखते देखते चले जा रहे थे।

पहाड़ पार कर कुछ दूर जङ्गल के रास्ते जाने के बाद वे एक बड़ी नदी के किनारे पहुँचे। उस नदी को देखते ही चन्द्रवर्मा को आश्चर्य हुआ। इतनी बड़ी सेना कैसे नदी पार ले जाई जाये? सर्पकेतु यह नदी कैसे पार कर सका?

चन्द्रवर्मा अभी यह सोच रहा था कि पास के एक बड़े वृक्ष की टहनी से जोर से फुँफकारता तीन सिरोंवाला महासर्प धड़ाम से नीचे गिरा। सब उसको आश्चर्य और भय से देख रहे थे कि उस सर्प ने मनुष्य रूप धारण किया। वह "चन्द्रवर्मा" चिल्लाता उसकी ओर भागा।

उसको उसके नाम से पुकारते हुए पास आते व्यक्ति को देखते ही चन्द्रवर्मा तुरन्त आगे बढ़ा। "अरे कालकेतु, तुम" कहकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया।

"हाँ, वर्मा तेरी कृपा के कारण जो मनुष्य बना, वही जादूगरनी कपालिनी का सेवक कालकेतु में ही हूँ। तुम्हारा शत्रु सर्पकेतु कुछ देर पहले ही नदी पार करके गया है। वह जिन तमेड़ों पर नदी पार गया था, मैं उनको उस पार से इस पार ले आया हूँ। उनको मैंने उन पेड़ों के पास सुरक्षित रख दिया है।" उसने कहा।

फिर वह चन्द्रवर्मा को हाथ पकड़कर उन पेड़ों के पास ले गया। "चन्द्रवर्मा! मैं तुम्हारी सहायता करने के लिए शंख के पहाड़ से सीधे यहाँ भागा-भागा आ रहा हूँ। बहुत दिन पहले ही

कपालिनी मर गई थी। मरने से पहले वह भूत और वर्तमान को दिखानेवाले शीशे के गोल और मनुष्य की हड्डी देती गई। उनकी सहायता से ही में जान सका कि तुम किस प्रकार की विपत्ति में थे। इस समय तुम्हारा शत्रु, और इस कारण मेरा शत्रु सर्पकेतु अपनी सेना के साथ कहाँ है, क्या देखें?" कहते हुए कालकेतु ने पेड़ के पीछे से शीशे का गोल निकाला और उसको मनुष्य की हड्डी से छुआ। फौरन उनको एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई दिया।



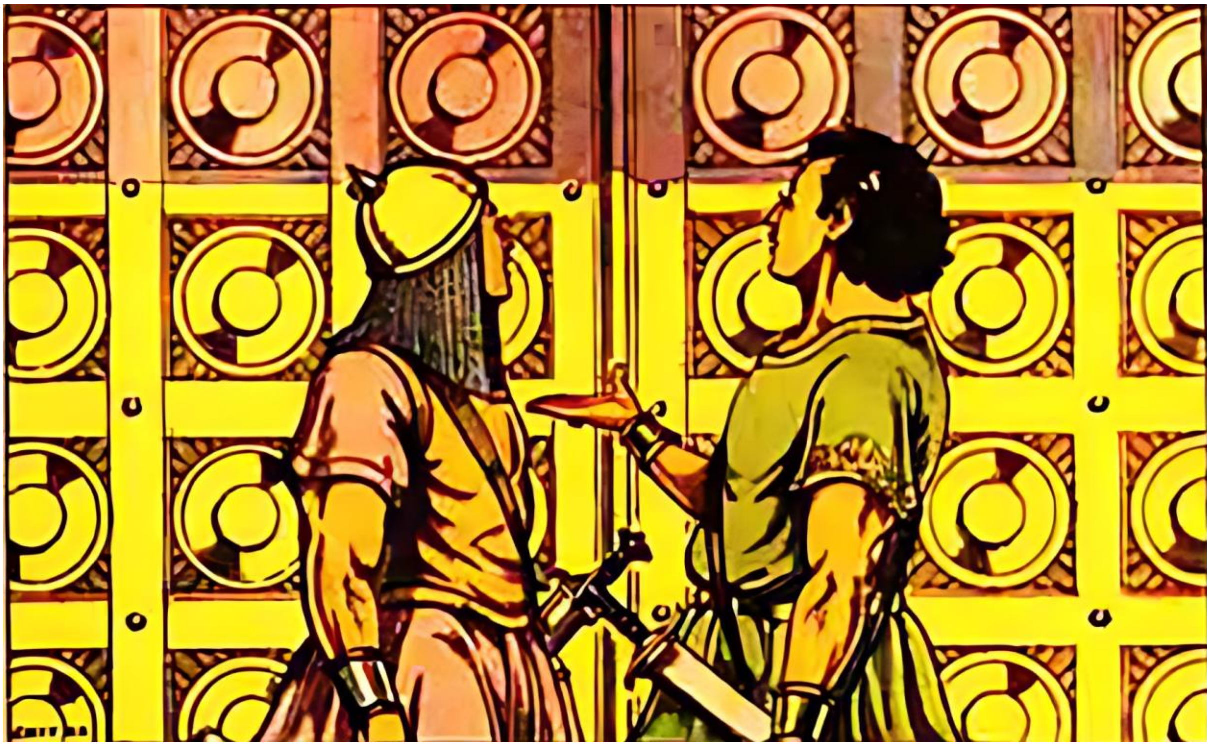
सूर्य की किरणों के कारण काँसे के किले की दीवारें चमचमा रही थीं। किले की चार दिवारी के उत्तर दिशा का द्वार खुला हुआ था। उसके सामने कुछ सिपाही पहरा दे रहे थे। किले के अन्दर कई महलों के खण्डहरों में सर्पकेतु के सैनिक इधर उधर घूम रहे थे। और यहाँ रखे रत्न और सोने को लूट रहे थे।

चन्द्रवर्मा! यह है तुम्हारे शत्रुओं की हालत। जैसा कि बहुत लोग सोचते हैं कि काँसे के किले की दीवार समुद्र से सटी नहीं हैं। करीब सौ बर्ष पूर्ब समुद्र में तूफान सा आया और काँसे का किला जलमग्न हो गया। फिर धीमे धीमे समुद्र का जल पीछे हटने लगा और अब समुद्र किले से कोई कोस भर दूर है। इसलिए अगर हम चाहें तो किले को चारों और से घेर सकते हैं।" कालकेतु ने समझाते हुए कहा।

कालकेतु के यह कहते ही चन्द्रवर्मा उत्साहपूर्वक सैनिकों को नदी पार भेजने में लग गया। फालकेतु द्वारा सुरक्षित समुद्र से किये गये समेड़ों पर और बड़ी-बड़ी नौकाओं पर सैनिक नदी पार कर गये।

कालकेतु एक घोड़े पर सवार हो सेना के आगे था और बाण की तरह काँसे के किले की ओर जा रहा था। उसके साथ सेना भी उसी गति से जा रही थी। एक घण्टे बाद उनको काँसे के किले की गगन चुम्बी दीवारे दिखाई दीं। वे काँसे के किले के पास जाकर जब उत्तर द्वार की ओर गये तो उसके दरवाजे बन्द थे। चन्द्रवर्मा ने सुबाहु और सेनापति धीरमल्ल को लेकर किबाड़ों के पास जाकर उनको गौर से देखा। वे मजबूत काँसे से बनाये गये थे। उन मजबूत किवाड़ों को कैसे तोड़ा जाए? कैसे अन्दर घुसा जाय? यह चन्द्रवर्मा सोच ही रहा था कि किले की दीवारों पर सर्पकेतु का चिल्लाना उसे सुनाई दिया। उसके साथ सैनिक थे, जिन्होंने बड़े-बड़े टोकरे, बोरे वगैरह पकड़ रखे थे।

सर्पकेतु ने अपने सैनिकों को, नीचे खड़े सैनिकों को दिखाकर कहा- "मेरे सैनिकों के हाथ में टोकरे और बोरे देखो! वे रत्न और सोने से भरे पड़े हैं। जो चन्द्रवर्मा को छोड़कर मेरी तरफ आयेगा उसको भी इतने रत्न और सोना दूँगा। जो आना चाहेंगे, उनके लिए किले के



दरवाजे खोल दिये जायेंगे। इन बोरों में सोना है कि नहीं, तुम ही देखो।

सर्पकेतु के यह कहते ही उनके सैनिकों नै चन्द्रवर्मा के सैनिकों पर चान्दी, सोना, रत्न यदि बिखेर दिये। चन्द्रवर्मा के सैनक उनको लेने के लिए एक दूसरे को धक्का देते आगे बढ़े। चन्द्रवर्मा को लगा कि परिस्थिति विषम हो सकती थी, इसलिए उसने सुबाहु से कहा- "सुबाहु, तुम बीरपुर के सैनिकों को लेकर यह दिखाओ कि तुम शत्रु सेना में जा मिलोगे और किबाड़ खोलने के लिए चिल्लाओ। अगर तुम्हारा विश्वास करके सर्पकेतु किबाड़ खुलवाए तो तुम तुरन्त अन्दर घुस जाओ। इस बीच में और धीरमल्ल बाकी सेना लेकर अन्दर आ जायेंगे। तब हम सब मिलकर शत्रु पर हमला करेंगे और उसका सर्वनाश कर देंगे।"

चन्द्रवर्मा के यह कहने पर सुबाहु ने सैनिकों के पास जाकर एकान्त में उनसे बात की। देखते-देखते सेना का एक भाग अलग होकर "सर्पकेतु महाराजा की जय" चिल्लाने लगा और वह किवाड़ों की ओर बढ़ने लगा। कुछ सैनिक





उनसे यूँ ही नकली युद्ध करने लगे, जैसे उनको जाने से वे रोक रहे हो।

यह देख कि चन्द्रवर्मा के सैनिकों में फूट पड़ गई है, सर्पकेतु ने किले की दीवार पर खड़े होकर अट्टहास किया। "किले के दरवाजे खोलो। शत्रु सेना का एक बड़ा माग हमारी तरफ आ रहा है। चन्द्रवर्मा और उसके अनुचरों को एक घड़ी में अपनी तरबार के पाट उतार दूँगा।" वह यों चिल्लाया। इसके बाद सर्पकेतु के सैनिको ने किबाड़ खोल दिये।

फिर मानों पलक झपकते ही सर्पकेतु की सेना नष्ट कर दी गई। सुबाहु अपनी सेना के साथ ज्योही किले में घुसा, त्योंही सामने के सैनिकों को अपनी तलवार से मारने लगा। इतने में चन्द्रवर्मा और धीरमल्ल भी काँसे के किले में घुस आये। उनके आक्रमण के फलस्वरूप सर्पकेतु की सेना किले की दीवारों की तरफ, खण्डहरो की ओर भागने लगी।

सर्पकेतु यह जानकर गुस्से में तमतमा रहा था कि उसे धोखा दिया गया था। वह अपने साथ के कुछ सैनिकों को लेकर दीवार पर से बड़े बड़े पत्थरों को उठाकर चन्द्रवर्मा के सैनिकों पर फेंकने लगा। यह देख चन्द्रवर्मा ने मुबाहु से कहा-"सुबाहु! अगर सम्भव हो तो उस दुष्ट को जीते जी पकड़ लो। अगर यह सम्भव न हो तो अपनी तरबार से उसके टुकड़े टुकड़े कर दो।"

सुबाहु कुछ सैनिकों को लेकर लुढ़के हुये किले के पत्थरों पर से रेङ्गता हुआ दीवार के उपरले भाग पर पहुँचा। परन्तु उसे ऐसा लगा जैसे सर्वकेतु को पकड़ना सम्भव न हो। यह जान कि उसके लिए मृत्यु

अवश्यम्भावी थी सर्पकेतु राक्षसों की तरह गरजता सुबाहु के सैनिकों को धड़ाधड मारने लगा। किले की दीवारों पर उसे तूफ़ान की तरह इधर उधर भागता देख चन्द्रवर्मा के सेनेक भय से काँपने लगे।

"चन्द्रवर्मा! सर्पकेतु का मुकाबला तो मैं ही ठीक कर सकता हूँ। वह किले की दीवार से पत्थर की तरह नीचे गिरने जा रहा है। अगर तुम उसे जीवित पकड़ना चाहते हो, तो भूमि पर गिरकर टुकड़े टुकड़े होने से पहले ही उसे पकड़ो।" कहकर कालकेतु तलवार निकालकर एक छलाङ्ग में किले की दीवार पर जा चढ़ा।

कालकेतु को देखते ही सर्पकेतु जोर से गर्जन करके उसकी ओर लपका। कालकेतु ने उसके बार से बचकर तलवार आगे बढ़ाकर, उस पर हमला करते हुए कहा- "सर्पकेतु! तुम अब कालकेतु से लड़ रहे हो। कालकेतु का मतलब है तीन सिरोंबाला महासर्प।" यह कहते ही उसने महासर्प का रूप धारण किया और फुँफकारते हुए फण ऊपर उठाया।

सर्पकेतु एक क्षण स्तब्ध खड़ा रहा, फिर मौत के डर से चिल्लाता किले



के दीवार से नीचे मुँह किये गिर पड़ा। चन्द्रवर्मा और बीरवर्मा और धीरमल्ल अभी उसके पास न पहुँच पाये थे कि उसने प्राण छोड़ दिये। इसके बाद सर्पकेतु के जो सैनिक मरने से बच गये थे, वे चन्द्रवर्मा की ओर आ गये।

*　　*　　*

कालकेतु ने जब काँसे के किले में रहने की अनुमति माँगी तो चन्द्रवर्मा उसके लिए मान गया। चन्द्रवर्मा ने अपने सेनिकों के साथ वह रात वही किले में काट दी। सुबह होते ही वहाँ प्राप्त धनराशि को

लेकर वह रुद्रपुर की ओर निकल पड़ा। दो तीन दिन चलने के बाद रुद्रपुर के कुछ वासियों ने आकर चन्द्रवर्मा से कहा कि राजा शिवसिंह जङ्गलों में चला गया था, और तब उनका कोई राजा न था। चन्द्रवर्मा ने बूढ़े के लड़के देवल को रुद्रपुर का राजा नियुक्त किया।

चन्द्रवर्मा महिष्मती नगर से कुछ दूर था कि नगरवासियों को क्रूर सर्पकेतु की मृत्यु के बार में मालूम हुआ। वे मङ्गल बाद्य समेत चन्द्रवर्मा से मिलने गये। उन्होंने उससे प्रार्थना की कि वह उनका सम्राट बने। परन्तु चन्द्रवर्मा इसके लिए न माना। उसने उनसे कहा कि यशोवर्धन राजा के बड़े लड़के, तपोवर्धन का राजा बनाया जाना उचित था।

महिष्मती नगर के पास के वन में आश्रम बनाकर तपोवर्धन रह रहा था। चन्द्रवर्मा और कुछ नगरवासियों ने जाकर उससे निवेदन किया कि वह राजसिंहासन पर बैठे। तपोवर्धन इसके लिए न माना। "मैंने तो बहुत पहले ही सब कुछ छोड़-छाड़ दिया है। मुझे राज्य की चाह नहीं है। चन्द्रवर्मा ही सब तरह से आपका राजा होने लायक है, क्योंकि वह ही आपके प्रेम, आदर और अभिमान का पात्र है। यही मेरी इच्छा है।" उसने कहा।

फिर, प्रजामत को स्वीकार करके तपोवर्धन ने स्वयं चन्द्रवर्मा के सिर पर मुकुट रखा। जनता ने जयजयकार किया। चन्द्रवर्मा ने अपने विश्वासपात्र धीरमल्ल और सुबाहु को क्रमशः अपना मुख्यमन्त्री और मुख्य सेनापति बनाया। और उसने कई वर्ष एक लोकप्रिय राजा की तरह राज्य किया।

(समाप्त)





ब्रिटेन के राजा लीयर की तीन लड़कियाँ थी। बड़ी लड़की गानेरल ने अल्बनी के सामन्त से शादी की। दूसरी लड़की रीगान ने कार्नवाल के सामन्त से विवाह किया। सकी तीसरी लड़की कार्डिलिया का अभी विवाह न हुआ था। उससे विवाह करने के लिए फान्स देश का राजा और वर्गन्डी का सामन्त लीयर के पास थे।

लीयर की उम्र अस्सी से ऊपर थी। वह कभी भी मर सकता था। उसने राज्य लड़कियों को सौंपकर विश्राम लेना चाहा। उसने अपनी तीनों लड़कियों को बुलाकर कहा- "बेटियो! तुम्हें मुझ पर जितना प्रेम है, उसके अनुपात में मैं अपना राज्य तुम्हें देना चाहता हूँ। इसलिए मुझे बताओ, तुम में से एक एक को मुझ पर कितना प्रेम है।"

"पिता जी! मेरे प्रेम का वर्णन करने के लिए शब्द नहीं है। आप ही मेरे लिए मेरे प्राणों से अधिक हैं।" बड़ी लड़की गानेरिल ने कहा। लीयर वह सुनकर बड़ा खुश हुआ। उसने उसके पति को अपने राज्य का तीसरा हिस्सा दे दिया।

फिर दूसरी लड़की रोगान ने भी कहा कि उसका प्रेम, अपनी बहन के प्रेम से भी अधिक था। सिवाय पिता को प्रेम करने के जीवन में उसको और कोई मुख न था, आनन्द न था। बढ़ा चढ़ाकर उसने कहा। इस तरह की लड़कियों का होना राजा लीयर ने अपना सौभाग्य समझा। उसने रीगान को राज्य का तीसरा भाग दे दिया। फिर उसने "मेरी सबसे छोटी लड़की का क्या ख्याल है?" कार्डिलिया से प्रेम-पूर्वक पूछा।



"पिता जी! मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं है।" कार्डिलिया ने कहा।

लीयर ने आश्चर्य से पूछा-"कहने के लिए कुछ नहीं है! अगर कुछ नहीं है, तो कुछ नहीं मिलेगा। सोचकर कहो।"

"एक लड़की को अपने पिता को जैसे प्रेम करना चाहिये, मैं आपको वैसे ही प्रेम कर रही हूँ। न उससे अधिक न उससे कम ही।" कार्डिलिया ने कहा।

लीयर को गुस्सा आया। "अगर तुमने अपना ख़याल न बदला तो तुम्हें कुछ न मिलेगा।" उसने कहा। "मैंने सच कहा है। मुझे बहनों की तरह चढ़ा चढ़ाकर बातें करनी नहीं आती। अगर उनको पिता पर इतना प्रेम था, तो उन्होंने शादी ही क्यों की थी? अगर मैंने शादी की तो मैं अवश्य अपने प्रेम में पति को हिस्सा दूँगी।" कार्डिलिया ने कहा।

सचमुच कार्डिलिया अपने पिता को बहनों की अपेक्षा अधिक चाहती थी। परन्तु उनकी तरह राज्य के लालच में पिता की झूठ-मूठ खुशामद करना उसे बुरा लगा। परन्तु मूर्ख लीयर को यह समझ में नहीं आया। उसने गुस्से में अपना सारा राज्य दोनों बड़ी लड़कियों को दे दिया। कार्डिलिया को कुछ भी न दिया। उसने उससे कहा-"मैं तुम्हारा पिता नहीं हूँ। तुम मेरी लड़की नहीं हो।" उसने भरे दरबार में अपने कर्मचारियों, आया और नौकर चाकरों को अपनी बड़ी लड़कियों में बाँट दिया, और कहा कि वह नाम मात्र ही राजा था और उसके लिए सौ नौकर काफी थे। उसने यह भी घोषणा की कि बारी बारी से वह अपने लड़कियों के यहाँ रहेगा, और वे ही उसका खर्च उठायेंगी।

राजा का व्यवहार सबको बुरा लगा। पर किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ। दरवारियों में से केवल केन्ट के सामन्त ने इस पर आपत्ति उठाई। उसके कहने पर लीयर की आँखें खुलनी चाहिये थी। परन्तु उल्टा उसका गुस्सा और बढ़ गया। उसने केन्ट के सामन्त से कहा-"पाँच दिन में देश छोड़कर चले जाओ। अगर उसके बाद तुम यहाँ वहीं दिखाई दिये तो तुम्हारे प्राण न बचेंगे।" केन्ट का सामन्त चला गया।

इसके बाद राजा लीयर ने फ्रान्स के राजा और बर्गन्ड़ी के सामन्त को बुलाकर पूछा-"क्या अब भी आप कार्डिलिया से शादी करना चाहते हैं?"

बर्गन्ड़ी के सामन्त ने कहा कि उसने अपना इरादा बदल लिया था। परन्तु फ्रान्स के राजा ने कहा कि वह अवश्य कार्डिलिया से विवाह करना चाहेगा।

उसकी ईमानदारी से वह प्रभावित था। कार्डिलिया ने अपनी बहनों से विदा लेते हुए कहा-"पिताजी पर, जो प्रेम तुमने कहा, तुम्हें है, वह आचरण में भी दिखाना।"



उसे इसका शोक रहा कि उसका पिता बहनों के फन्दे में फँस गया था। वह फ्रान्स के राजा के साथ चली गई।

लीयर राजा अपनी व्यवस्था के अनुसार पहले महीने बड़ी लड़की गानेरिल के पास रहा। अभी महीना पूरा भी न हुआ था कि उसका असली रङ्ग बाहर आने लगा। वह उस पिता को, जिसने उसे राज्य दिया था, देखकर नाक भौं चढ़ाने लगी। वह जब बुलाता, तो उसका बुलाना वह अनसुना कर देती। जब वह बात कर रहा होता तो उठकर चली जाती। वह हमेशा खीझती रहती कि उसको सौ नौकरों की क्या जरूरत

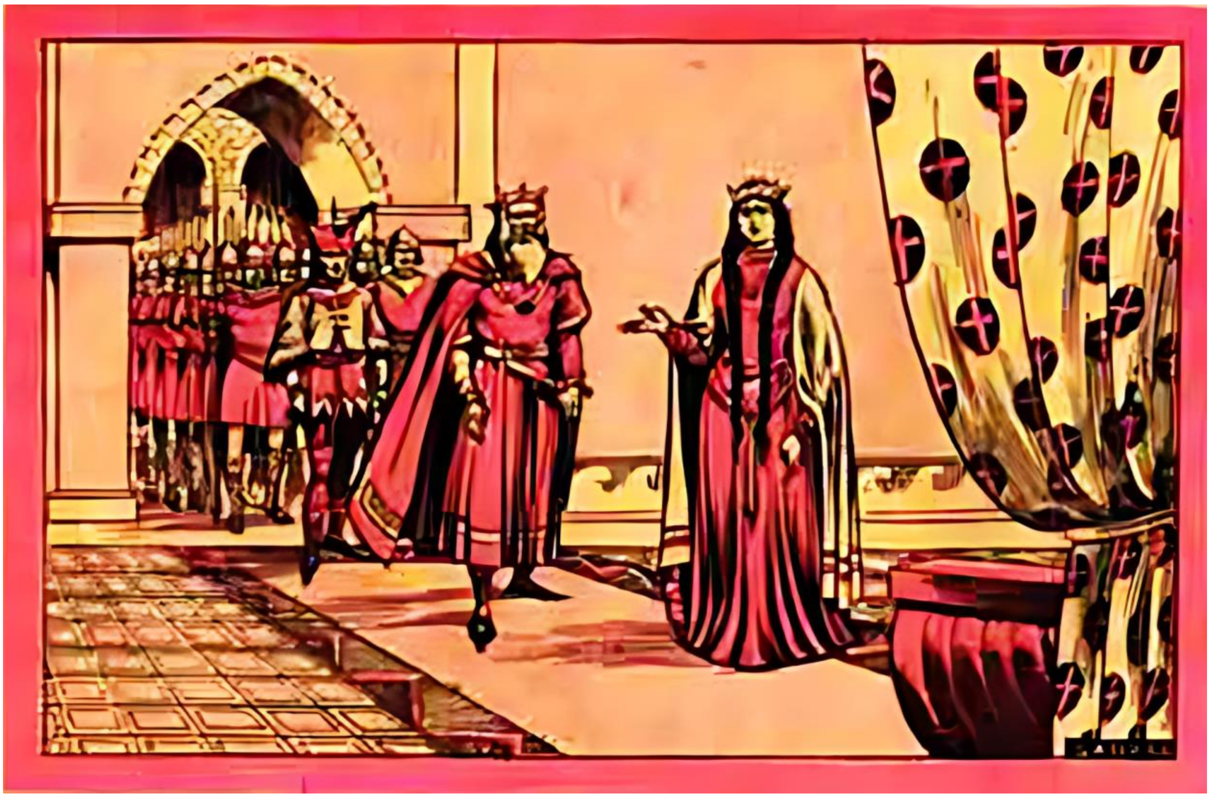
थी। उसके उकसाने पर नौकर भी लीयर की उपेक्षा करने लगे। यह सब लीयर ने सहा।

जब गानेरिल इस प्रकार पिता का तिरस्कार कर रही भी, तो केन्ट के सामन्त ने, जिसको देश निकाला दिया गया था, राजा की सेवा करने का निश्चय किया। उसने नौकरों के कपड़े पहने। दूसरा नाम रखकर लीयर के पास वह नौकर नियुक्त हुआ और उसकी सेवा करने लगा। जो कोई लीयर के सामने बेअदबी से पेश आता वह उसको सजा देता।

केन्ट के सामन्त की तरह विदुषक भी राजा की सेवा कर रहा था। वह एक और तो लीयर की मूर्खता की हँसी उड़ाता, और दूसरी ओर हास परिहास से उसका मनोरञ्जन भी करता।

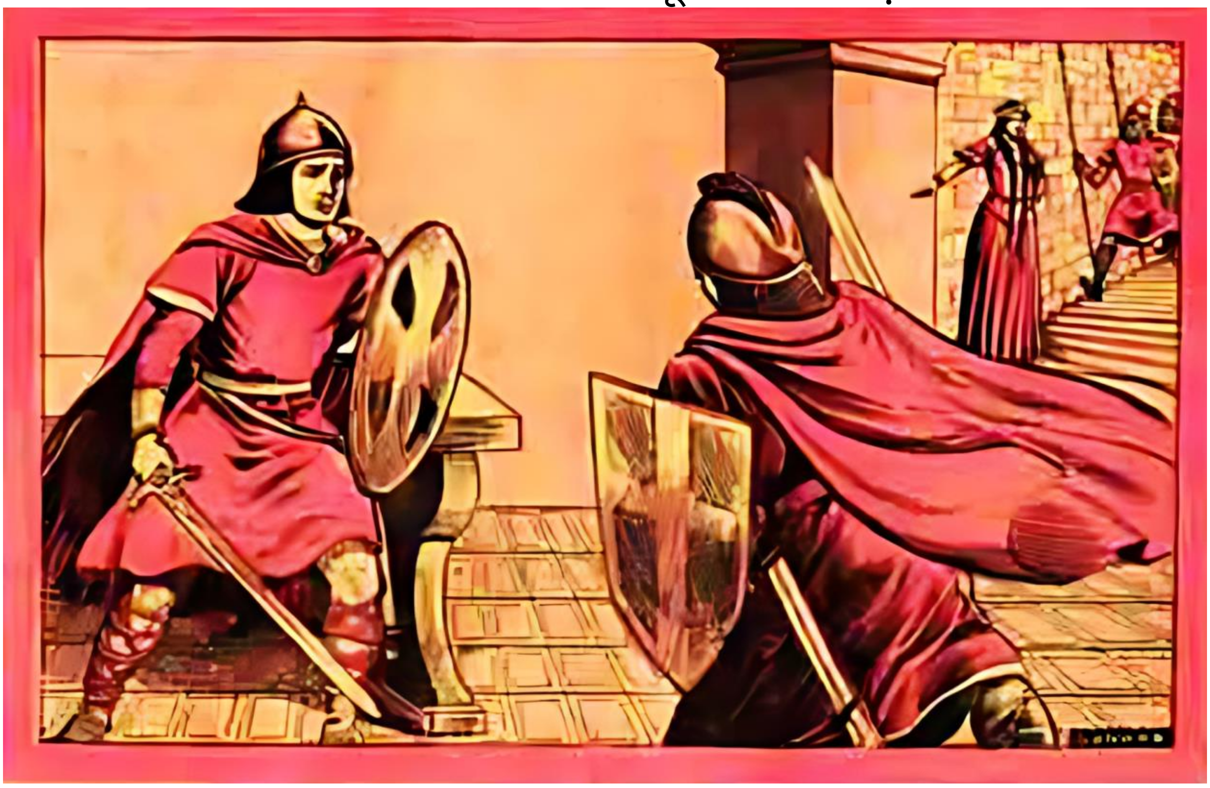
गानेरल को इस विदूषक की उल्टी सीधी मजाक बिल्कुल पसन्द न थी। उसने एक दिन पिता से साफ साफ पूछा-"तुम्हें इतने आदमियों की क्या जरूरत है? इन सबको खिलाते खिलाते हमारी जान जा रही है।"

लीयर आपे से बाहर हो गया। उसे आश्चर्य हुआ कि उसकी बड़ी लड़की उससे



आधा राज्य लेकर भी इस तरह का व्यवहार कर रही थी। उसने गानेरिल को तरह तरह से बुरा भला कहा। उसने कहा-"मैं यहाँ न रहूँगा। मैं अपनी दूसरी लड़की रीगान के पास चला जाऊँगा।" यह कहकर वह उसके घर से निकल पड़ा।

नौकर के वेष में केन्ट के सामन्त ने रीगान के पर जाकर सूचित किया कि राजा लीयर अपने नौकर चाकरों के साथ आ रहा था। तब तक गानेरिल ने भी अपने बहन के पास आदमी भेज दिया था। उसका उद्देश्य था कि बहन पिता के साथ आये हुए सब लोगों को आश्रय न दे। केन्ट का सामन्त जब पहुँचा तो वह आदमी भी पहुँचा। वह आदमी वही था, जिसका केन्ट के सामन्त ने गानेरिल के घर में अपमान किया था। केन्ट के सामन्त को सन्देह हुआ कि वह कोई इधर उधर की खबर ला रहा था। उसने उसको खूब पीटा। इस बीच रीगान बाहर आई। उसने केन्ट के सामन्त को कैदी बना लिया। लीयर ने आते ही देखा कि उसका नौकर फैद में था। उसने वहाँ के नौकरों से पूछा-"मेरी लड़की और दामाद





कहाँ हैं?" उन्होंने कहा-"रात भर वे सफर करके आये है, और आराम कर रहे है।" लीयर जब गुस्से में चिल्लाया कि वह उनको देखकर रहेगा तो रीगान और उसका पति बाहर आये। जब उनके साथ अपनी बड़ी लड़की गानेरिल को देखा, तो लीयर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपनी बड़ी लड़की से पूछा-"क्या तुम्हें मेरा मुँह देखते हुए शर्म नहीं आती?"

रीगान ने अपने पिता से कहा कि वह बहन के घर वापस चला जाये, और अपने नौकरों में से आधों को निकाल दे।

"मैं अपने सौ आदमियों के साथ यहीं रहने जा रहा हूँ। तुम गानेरिल की तरह दुष्ट नहीं हो।" लीयर ने कहा।

"तुम्हारे लिए पचास आदमी भी अधिक हैं। पचीस आदमी काफी हैं।" रीगान ने कहा।

"तुमसे तो गानेरिल का ही दुगना प्रेम मालूम होता है। वह पचास नौकरों को रखने के लिए मान गई थी।" लीयर ने कहा। "पच्चीस तो अलग। दस आदमी भी अधिक है। पाँच की भी जरूरत नहीं हैं। जब मेरे नौकर, और मेरी बहन के नौकर हैं, तब तुम्हें अलग नौकरों की क्या जरूरत है?" गानेरिल ने पूछा।

लीयर ने अपनी दोनों लड़कियों को जी भर कोसा। इतने में अन्धेरा हो गया। तूफान भी चलने लगा। उसको लगा बिना नौकर चाकरों के अपनी लड़कियों के यहाँ रहने से तो यही अच्छा था कि वह तूफान में कहीं चला जाये।

लड़कियों के दुर्व्यवहार से वह पागल होता-सा लगता था।

वह इतना बूढ़ा था कि उन पर भरोसा करके उसने अपना राज्य तक दे दिया था।

ऐसे पिता को अपने आदमियों के साथ अन्धेरे में नूफान में जाना देख न गानेरिल ने, न रीगान ने ही उसको मना किया।

तूफान बढ़ता जाता था। लीवर के आदमी तितर बितर हो गये थे। लीयर राजा ऐसी जगह तूफान में फँस गया, जहाँ दूर तक कहीं पेड़ न था। उसके साथ केवल विदूषक ही था। लीयर राजा को न तूफान की परवाह न थी, न बारिश की, न बिजली की ही। उसने तूफान से कहा-"तुम इस मनुष्य जाति को नष्ट कर दो, जो कृतज्ञता नहीं जानती है।"

इस तूफान में नौकर के वेष में, केन्ट के सामन्त ने अपने मालिक को ढूँढ़ते हुए आकर पूछा-"तो आप यहाँ है! इस तूफान के कारण जानवर भी छुप-छुपा गये हैं।"

क्योंकि बाहर के तूफान की अपेक्षा राजा लीयर के मन के अन्दर बड़ा तूफान उमड़ रहा था. इसलिए वह तूफान उसे तङ्ग नहीं कर रहा था। परन्तु केन्ट का सामन्त उसको एक झोपड़ी में ले गया। वहाँ उससे पहले ही एक भिखारी आया हुआ था। उसको देखकर राजा लीयर ने



कहा-"कृतघ्न लड़कियोंने ही इसकी यह हालत की होगी।" उसका पागलपन बढ़ता जाता था। सबेरे केन्ट का सामन्त, लीयर को डोबर नामक बन्दरगाह पर ले गया। उसे अपने मित्रों के यहाँ रखकर वह नौका में फ्रान्स गया।

कार्डिलिया को जब अपने पिता की हालत मालम हुई तो वह बहुत रोई। वह अपने पति की अनुमति लेकर कुछ सेना के साथ ब्रिटेन आई। अगर जरूरत पड़ी तो बहनों से युद्ध करके वह पुनः अपने पिता को गद्दी दिलाना चाहती थी।

कार्डिलिया जब अपनी सेना के साथ डोवर पहुँची तो लीयर कहीं भाग गया था। वह सैनिकों को डोवर के पास घूमता घामता दिखाई दिया। उसके सिर पर घास का एक मुकुट था। वह पागलपन में गीत गुन गुना रहा था।

बैद्य के चिकित्सा करने पर लीयर की स्थिति कुछ सुधरी। उसने कार्डिलिया को पहचाना। उससे माफी भी माँगी।

कार्डिलिया की सेना से लड़ने के लिए गानेरिल और रीगान ने अपनी सेना भेजी। उस सेना का सेनापति ग्लस्टर का सामन्त था। यह ग्लस्टर का सामन्त गानेरल और रीगान से प्रेम करता था। यह पता लगते ही गानेरिल ने अपनी बहिन रीगान को बिष दे दिया और स्वयं विष लेकर आत्महत्या कर ली।

युद्ध में कार्डिलिया की सेना हार गई। वह ग्लस्टर द्वारा कैदी बना ली गई। अगर वह जीवित रही, तो सिंहासन न मिल सकेगा, यह सोचकर ग्लस्टर ने उसको मरवा दिया। उसको मरा देखकर राजा लीयर का भी दिल टूट गया, और वह भी मर गया।





रोम देश में यूनान नाम का राजा हुआ करता था। वह बहुत शक्तिशाली था। उसके नीचे कई सामन्त थे। उसे त्वचा की कोई बीमारी हुई। बड़े बड़े वैद्य भी उसकी चिकित्सा न कर सके। राजा ने कितनी ही गोलियाँ खाई, कितने ही कषाय पिये, कितने ही लेप लगवाये, पर सब व्यर्थ रहे।

तब उस देश में रय्यान नाम का एक बूढ़ा बैद्य आया।

रय्यान कई तरह के वैद्यक में कुशल था। मशहूर था। राजा के त्वचा के रोग के बारे में मालूम होते ही, उसने राजमहल में जाकर राजा से कहा-"महाराज, अगर आपने अनुमति दी तो मैं आपकी बीमारी ठीक कर दूँगा।"

"अगर तुमने मेरी बीमारी ठीक कर दी, तो तुम्हें मैं बहुत बड़ा धनी बना दूँगा और अपना आन्तरङ्गिक मित्र बना लूँगा।" राजा ने कहा।

"आपकी बीमारी जरूर ठीक होगी। मैं आपको किसी प्रकार की कोई दर्द न होने दूँगा और चिकित्सा करूँगा।" वैद्य ने कहा।

फिर वैद्य ने एक मकान लिया और उसमें औषधी तैयार करने लगा। उसने एक लकड़ी ली, उसमें छेद किया। उसमें दवा डाल दी। फिर छेद में एक बड़ा-सा डण्डा लगा दिया। एक विचित्र हथौड़ा-सा तैयार हो गया।

वैद्य ने जाकर उसे राजा को दिया। "महाराज! आज आप इससे पोलो खेलिये। अगर आप हथेली में पसीना आने तक खेलते रहेंगे, तो आपकी बीमारी ठीक हो जायेगी।"

महेन्द्रकुमार



"पोलो" खेलनेवाले, पोड़ों पर सवार होकर जमीन पर गेन्द को एक लम्बी हथौड़ी-जैसी चीज़ से मार मार कर खेलते हैं। राजा अपने मित्रों के साथ मैदान में पोलो खेलने गया। यह खूब खेला। उसकी हथेली पर पसीना आ गया।

फिर वैद्य, राजा को स्नानशाला में ले गया। उससे अच्छी तरह स्नान करवाया। फिर उसको सुला दिया। बाद में वह अपने घर चला गया।

अब राजा सोकर उठा तो त्वचा की बीमारी का नामो निशान भी न था। उसके आनन्द और आश्चर्य की सीमा न थी। अगले दिन जब वैद्य दरबार में आया, तो राजा ने उसको गले लगा लिया। उसको अपने पास बिठाया। उसको उसने बहुत-से उपहार दिये।

तब से राजा को वैद्य की प्रशंसा करने के सिवाय कुछ काम न था। इस तरह का वैद्य कही और दुनियाँ में मिलेगा। इसने मुझे एक दवा न दी, एक लेप नहीं लगाया। लकड़ी के छेद में दवा रखकर मेरे शरीर में पहुँचा दी। इस तरह एक ऐसी चिकित्सा की, जो अभी तक कोई नहीं कर पाया था। रोज दरबार में वैद्य पर ही बातचीत होती। हमेशा राजा वैद्य को कोई न कोई उपहार देता ही रहता।

यह देख मन्त्री को गुस्सा आया। राजा और वैद्य में फूट डालने के उद्देश्य से मन्त्री राजा से एक दिन एकान्त में मिला। उसने राजा से कहा-"भले ही आपको हमारी बात न जँचे, पर हित की बात कहना हमारा धर्म है। कर्तव्य है। आप इस वैद्य को इतनी महत्ता देकर आफत मोल ले रहे हैं।"

क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई है! रय्यान जैसा वैद्य दुनियाँ में नहीं है। जो बीमारी बड़े बड़े वैद्य ठीक न कर पाये थे, उसे इसने इतनी आसानी से ठीक कर दिया, जैसे कोई जादू कर दिया हो। क्या तुमने यह नहीं देखा? इस तरह के वैद्य को जाश्रय देने में क्या आफत है?" राजा ने पूछा।

"महाराज दूर की नहीं सोच रहे हैं। इस रय्यान का इतना शक्तिशाली होना ही खतरनाक है। जो इतनी वैद्यक जानता है, वह आपको कोई चीज देकर कभी न कभी मार भी सकता है।" मन्त्री ने सविनय कहा।

"यह ठीक है। पर तुम्हारी आखिर सलाह क्या है? तुम क्या चाहते हो?" राजा ने मन्त्री से पूछा।

"मेरी सलाह है कि वैद्य का सिर कटवा दिया जाये। उसको समय देना भी ठीक नहीं है। इसलिए उसको बुलाकर उसके आते ही उसका सिर कटवा दीजिए।" मन्त्री ने कहा।

"तुम्हारी सलाह ठीक है।" राजा ने कहा। तुरन्त उसने वैद्य को बुलवाया।



वैद्य ने राजा से आकर पूछा-"सुना है, आपने मुझे बुलाया है। क्या आज्ञा है?"

"तुम्हारा सिर कटवाने के लिए बुलाया है।" राजा ने कहा।

वैद्य चकरा गया। "क्यों? मेरे कारण आपको क्या हानि हुई है?" उसने पूछा।

"मुझे भेदियों द्वारा मालूम हुआ है कि तुम मेरे प्राण लेने आये थे। इसलिए पहले मैं ही वार करता हूँ। मरने के लिए तैयार हो जाओ।" कहकर राजा ने जल्लाद को बुलाया।

"महाराज आपके किसी ने कान भर दिये हैं। जाने दीजिये। सबको एक न एक दिन तो मरना ही है। बस, मुझे एक ही अफसोस है। मेरे घर पर एक बैद्यक का ग्रन्थ है। आप उसे मेरे उपहार के रूप में स्वीकार कीजिये। उसमें कई बहुमूल्य रहस्य हैं। मेरे सिर कट जाने के बाद भी आप मेरे सिर से बात करवा सकते हैं। यह रहस्य भी उस ग्रन्थ में है।" वैद्य ने कहा।

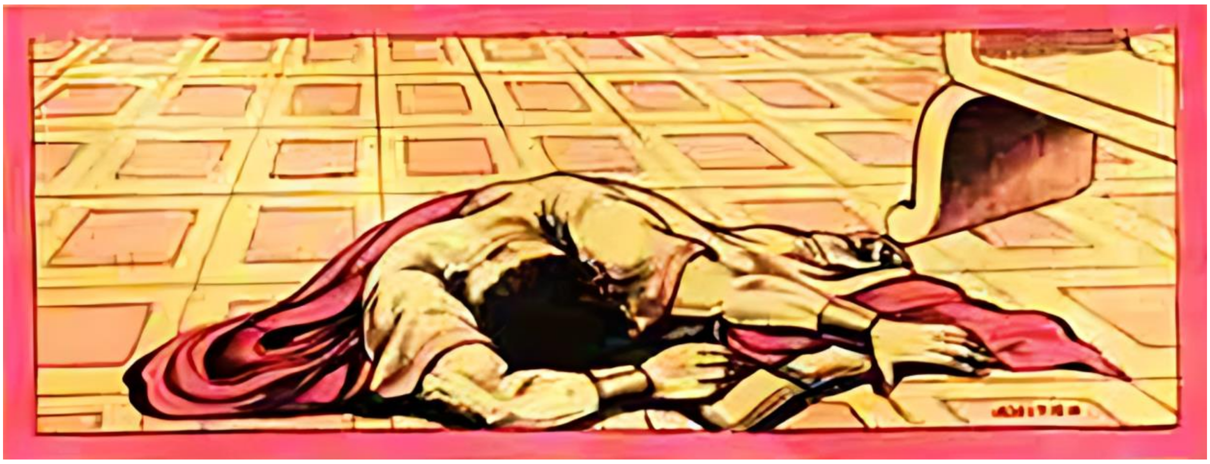
राजा ने वह ग्रन्थ तुरन्त देखना चाहा। उसने नौकरों को भेजकर वैद्य के घर से उसकी पुस्तकें मँगवाई। राजा को उनमें से एक पुस्तक दिखाकर कहा-"यही पुस्तक है जिसके बारे में मैंने आपको बताया था।"

राजा जल्दी-जल्दी उस पुस्तक के पृष्ठ पलटने लगा। परन्तु क्योंकि पृष्ठ एक दूसरे से चिपके हुए थे, इसलिए अंगुलियों को ओठ पर लगाकर उन्हें खोलना पड़ा। कुछ पृष्ठों के पलटने के बाद राजा ने कहा-"ये सब पृष्ट तो वाली हैं।

"और पलटिये, बायीं तरफ तीन पंक्तियाँ लिखी होगी।" वैद्य ने कहा।

तीन-चार पृष्ठ पलटने के बाद राजा गिर गया। सब हाहाकार करने लगे। उसकी परीक्षा करने से पहले ही उसके प्राण खतम हो गये थे। क्योंकि राजा ने जिन पृष्ठों को पलटा था, उनपर जबर्दस्त जहर लगा हुआ था। जब जब अंगुली मुख में वह रखता तब तब वह थोड़ा थोड़ा जहर खाता गया। वही जहर उसके शरीर में फैल गया।

इस प्रकार मन्त्री की बात सुनकर राजा ने कृतघ्न होकर उपकारी बैद्य को मारना चाहा; पर वह स्वयं अपने प्राण ले बैठा।





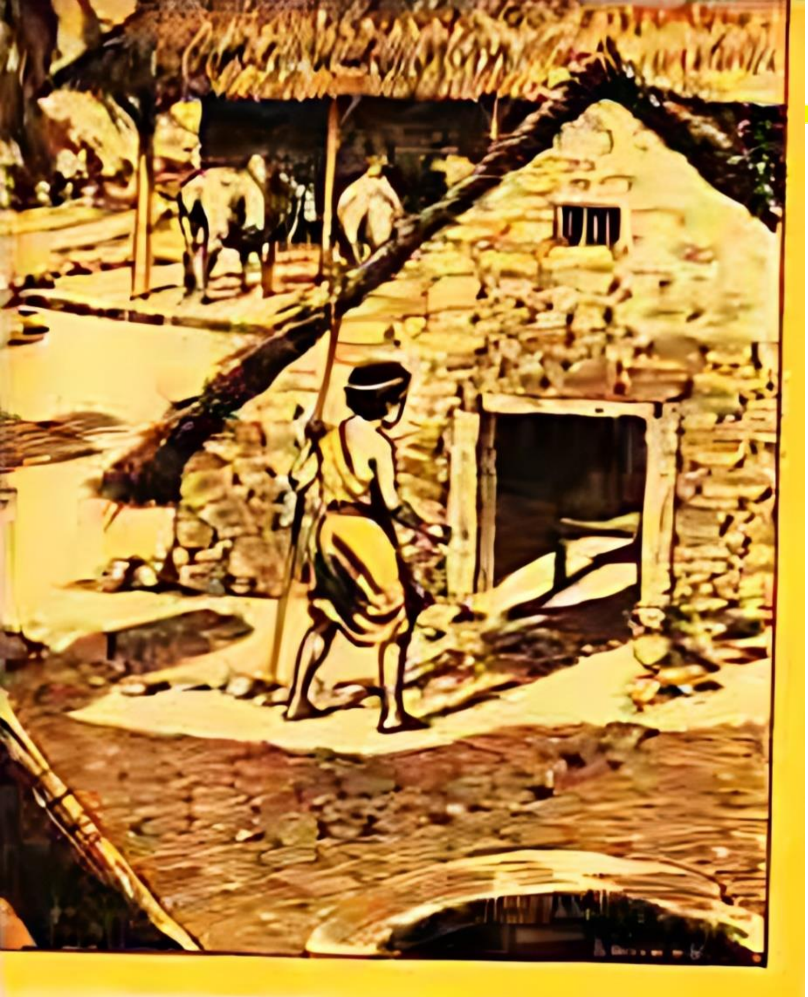
कोङ्कण तट के पर्वतों में एक पर्वत का नाम भूतों का पर्वत था। जो आसपास के पहाड़ों पर अपनी गौ चराते थे, वे उन्हें इस पहाड़ पर न जाने देते थे। अगर कभी कोई भी वहाँ चली जाती तो ग्वाले उसे पकड़कर लाने की कोशिश भी न करते। क्योंकि जो गौ के लालच में वहाँ गये भी थे, वे वहाँ से कभी वापस न आये थे।

भूतों के पहाड़ पर गौबों का झुण्ड रहता। सूर्योदय होते ही वे पशुशाला से से बाहर आती और सारे पहाड़ पर चरती। और शाम होते ही वे इस तरह चली जाती, जैसे उनको कोई हॉक कर ले जा रहा हो। पर उनके साथ कभी कोई न होता। उनकी कौन देख-भाल कर रहा था, कौन उनका दूध दुह रहा था और उस दूध का क्या कर रहा था, किसी को कुछ न मालूम था।

उसी पहाड़ पर पशुशाला के समीप ही एक झोपड़ी भी थी। रोज शाम को झोंपड़ी की छत से धुआँ इस तरह निकलता जैसे किसी ने अन्दर चूल्हा जला रखा हो, तो भी भूतों के पहाड़ पर किसी ने कभी किसी आदमी को न देखा था।

कहा जाता था कि उस पहाड़ पर भूत थे। जब कभी उनको मौका मिलता, वे आसपास के पहाड़ों पर से चरती गौबों को ले जाते और उनके लिए अगर कोई उनके पहाड़ पर आता, तो उनको वे मार देते थे, आदि। इस भय के कारण उस पहाड़ पर कोई न जाता था। उसके पास जाने में भी घबराते थे।

लतादेवी



इस हालत में, वहाँ सत्यपाल नाम का एक ग्वाला, नया-नया आया। रोज भूतो के पहाड़ पर क्या होता था उसने देखा, और लोग उसके बारे में क्या कहते थे यह भी सुना। सत्यपाल नवयुवक था। साहसी भी। इसलिए पहाड़ पर स्वयं जाकर उसने जानना चाहा कि यहाँ क्या हो रहा था।

दूसरे ग्वालों ने उसे समझाया कि वह न आये। पर वह न माना। "जाना ही है तो पहाड़ पर जाओ। पर उस झोपड़ी में न जाना। उसके अन्दर जाकर अभी तक कोई बाहर नहीं आया है। अगर तुम हठ करके गये तो तुम्हारी गति भी वही होगी।" मित्रों ने सत्यपाल को आगाह किया।

परन्तु सत्यपाल को डर न था, वह धीरज रखकर भूतों के पहाड़ पर गया और वहाँ झोपड़ी की ओर चला। वह पहाड़ मामूली पहाड़ की तरह था। कहीं भयङ्कर दृश्य न थे। सर्वत्र नीरवता थी। उसने झोपड़ी के पास जाकर अन्दर झाङ्क कर देखा। झोपड़ी ऐसी लगती थी, जैसे उसमें कोई आदमी रह रहा हो। "कौन है अन्दर?" सत्यपाल ने दो-तीन बार आवाज दी, पर अन्दर से कोई जवाब न आया। किसी ने कुछ नहीं कहा।

बिना किसी हिचक के सत्यपाल झोपड़ी के अन्दर गया। एक तरफ बर्तनों में भोजन परोसा हुआ था। दूसरी तरफ खाट पर बिस्तर बिछा हुआ था।

"यहाँ आदमी ही रह रहे हैं। शायद बाहर गये हुए हैं। उनके आने तक आराम जो कर लूँ।" सोचकर सत्यपाल खाट पर लेट गया।

इतने में झोपड़ी के बाहर उसे आहट सुनाई दी। कोई राक्षस-सा जल्दी जल्दी

अन्दर आया। वह सीधे बर्तनों के पास गया। " वह जो खाट पर लेटा है, क्या उसके लिए भी रसोई बनी है?" वह जोर से चिल्लाया। फिर भूत ने सत्यपाल के पास आकर कहा-"उठो, भोजन के लिए उठो।"

और कोई होता तो उस भूत को देखकर आधा मर जाता। परन्तु सत्यपाल ने बिना डर के कहा- "जिसने मेहनत की हो, उसे ही खाना चाहिए। मैंने तो कोई मेहनत नहीं की है।"

भूत ने कोई जवाब न दिया। चुपचाप वह जाकर बर्तनों के पास बैठ गया और क्षण में उनमें परोसा हुआ भोजन चट कर गया।

फिर उसने फावड़ा आदि सत्यपाल को पकड़ाते हुए कहा-"ये लेकर मेरे साथ दुमञ्जिले मकान में आओ।

"वहाँ से मैं कुछ नहीं लाया हूँ, इसलिए यह जरूरी नहीं है कि वहाँ कुछ ले जाऊँ।" सत्यपाल ने कहा।

भूत ने स्वयं फावड़ा लेकर कहा- "तो मेरे साथ आओ।"



"तुम पहले चलो, मैं पीछे चलूँगा।" दोनों दुमञ्जिले मकान के पहिले मञ्जिल गये।

"यहाँ खोदो।" भूत ने कहा।

"यहाँ मैंने कुछ गाड़ा नहीं है। इसलिए क्यों खोदूँ?" सत्यपाल ने कहा। भूत ने ही खोदा। इतने में एक बड़ा-सा वर्तन बाहर निकला।

"उसे ऊपर उठाओ।" भूत ने कहा।

"ऊपर तो तब न उठाऊँ, जब मैंने उसे नीचे उतारा हो।" सत्यपाल ने कहा।

भूत ने उस बर्तन को उठाकर फर्श पर रखा। "इसका ढक्कन निकालो।"

"मैंने ढक्कन रखा हो, तब न निकालूँ!" सत्यपाल ने कहा।

भूत ने ही ढक्कन निकाला। वह बर्तन सोने की मुहरों से भरा पड़ा था। भूत ने उनको फर्श पर बिखेर कर, उनके तीन ढेर लगाये। "बताओ, इसमें तुम्हारा ढेर कौन सा है। ठीक बताओगे तो तुम्हारा भला होगा, और मैं शाप से विमुक्त हो जाऊँगा। अगर तुमने ठीक ढेर न चुना, तो मैं तुम्हें मुट्ठी भर राख बना दूँगा, और जब तक कोई और मेरी रक्षा करने नहीं आयेगा मैं इसी तरह रहता जाऊँगा। अगर मैं शाप विमुक्त हो गया तो इन ढेरों में एक तेरा, दूसरा गरीब जनता का, तीसरा मेरे द्वारा मारे गये लोगों के बाल-बच्चों का। समझे?"

सत्यपाल ने अपने हाथ से तीनों ढेरो को घेरकर कहा-"इनमें से एक मेरा है।"

तुरन्त झोपड़ी में एक बिजली सी चमकी। भूत अदृश्य हो गया और उसकी जगह एक बहुत ही सुन्दर व्यक्ति दिखाई दिया। उसने सत्यपाल से कहा-"तेरे कारण में शाप विमुक्त हो गया। मैं जा रहा हूँ। यह पहाड़, इस पर चरनेवाली गौवें, यह सोना सब तेरा है।" यह कह वह कहीं चला गया।

जब सत्यपाल भूतों के पहाड़ से सजीव वापस आया, तो बाकी ग्वालों को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने जो कुछ गुजरा था, उनको बताया।

सत्यपाल तब से भूतों के पहाड़ पर रहने लगा और अपने हिस्से के सोने को लेकर आराम से रहने लगा। लोगों ने उस पहाड़ को "भूतों का पहाड़ " कहना भी छोड़ दिया।



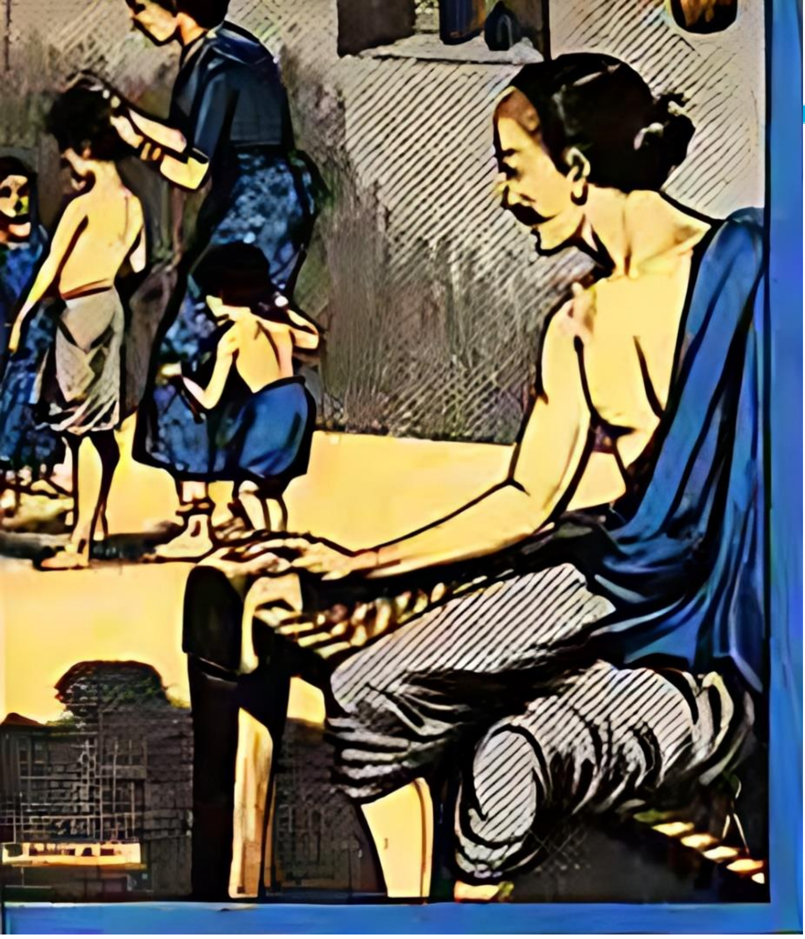
सौतेली माँ का आशीर्वाद





विक्रमार्क फिर पेड़ के पास गया। शव उतारकर, कन्धे पर डाल, पहले की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा! तुम इतने कष्ट झेल रहे हो, तो भी अपना कार्य नहीं छोड़ रहे हो, यह सचमुच असाधारण बात है। मामूली आदमी वचन देकर भी पूरा नहीं कर पाते हैं। इसके उदाहरण के रूप में मैं तुम्हें देवल की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यों कहानी सुनानी शुरू की।

सिन्धु नदी के प्रान्त में देवल नाम का एक आदमी रहा करता था। वह अपनी थोड़ी सी जमीन में अपने कुटुम्ब के लिए काफी कुछ पैदा कर लेता। वह पत्नी, और लड़के के साथ आराम से रह रहा था।



देवल की पत्नी बीमार हुई। बहुत इलाज करवाया; पर ठीक न हुई। पत्नी को लगा कि उसकी मौत पास थी। उसने पति को बुलाकर कहा- "मेरे गुजर जाने के बाद मुझे न भूल जाना। दुबारा शादी करके लड़के के लिए सौतेली माँ न लाना। किसी भी स्त्री को अपने बच्चों पर जितना प्रेम होता है, उतना दूसरे के बच्चों पर नहीं होता। अगर दुबारा शादी की भी तो, यह बात न भूलना। लड़के को पाल पोस कर बड़ा करना।" यह कहकर उसने हमेशा के लिए आँखें मूँद ली।

देवल कुछ दिन दुःखी रहा। दुःख के कम होते ही उसने रोहिणी नाम की कन्या से फिर विवाह कर लिया। सौभाग्यवश रोहिणी समझदार थी। वह पति के लड़के, आनन्द की बड़े प्यार से देख भाल करती। यह देख देवल खुश हुआ। उसका विश्वास था, यदि रोहिणी आनन्द को ठीक तरह न देखती, तो उसकी पहली पत्नी की आत्मा को शान्ति न मिलती।

समय बीतता जा रहा था। आनन्द खूब पढ़ लिख रहा था। अगर पिता उसे कुछ काम काज सिखाने का प्रयत्न करता, तो रोहिणी उसे कुछ न करने देती। उसने भी एक लड़के और एक लड़की को जन्म दिया। तीनों इस तरह रह रहे थे, जैसे एक ही माँ के बच्चे हो।

देवल की एक गौ थी। वह उसको अपने पाणों से भी अधिक चाहता था। वह यकायक बीमार पड़ी। उसने बूढ़े बुजुर्गों को बुलाकर गौ दिखाई। जिस जिसने जो कुछ करने को कहा, उसने वह सब किया। पर गौ स्वस्थ न हो सकी। देवल ने सोचा जैसे भी हो, गौ को वह ठीक करवाकर रहेगा। उसे लगा कि

उसकी गौ पर किसी ने मन्त्र लगा दिया था, और भूत-वैद्य उसे अवश्य ठीक कर सकते थे।

पास में ही रुद्रदेव नाम का एक ग्वाला था, जो भूत-वैद्य किया करता था। वह नदी के परले पार एक कुटिया में रहा करता था। एक दिन सवेरे देवल तमेड़ पर नदी पार करके उसकी कुटिया में गया। जब वह यहाँ न दिखाई दिया, तो उसने उसको पास के जङ्गल में खोजा।

आखिर यकायक रुद्रदेव एक पेड़ के पीछे से देवल के सामने आया। उसने जोर से पूछा-"कौन हो तुम? तुम्हें क्या काम है?" देवल ने काँपते हुए अपनी गौ की बीमारी के बारे में भूत-वैद्य से कहा। भूत-वैद्य ने गरजकर कहा-"तुम्हारी गौ पर बुरी हवा लगी है। तुम वचन देवर मुकर गये हो। तुम्हें सजा देने के लिए तुम्हारी गौ बीमार हो गई है।"

"स्वामी! कुछ भी हो आप मेरी गौ बचाइये।" देवल ने कहा।

"इसका एक ही उपाय है। अगर तुमने अपने लड़कों में से किसी एक की बलि दे दी तो तुम्हारी गौ के प्राण बच सकेंगे।" भूत वैद्य ने कहा।



देवल ने अचरज में पूछा-"नर बलि! और वह भी अपने लड़कों में से एक की! यह मुझसे न हो सकेगा।"

भूतवैद्य ने अट्टहास करके कहा-"अरे पगले! तुझे अपने लड़के को मारने की जरूरत नहीं है। पर यह निश्चय कर लो कि तुम किस लड़के की बलि देना चाहते हो, उस लड़के की आँखों में देखो। उसे छीङ्क आयेगी। तुम "जीते रहो" कहकर आशीर्वाद मत दो। फिर लड़के की आँखों में देखो। फिर जब वह छीङ्के तब भी आशीर्वाद मत देना। इस तरह जब वह

तीन चार छीङ्केगा, तो वह तेरा बेटा न रहेगा। पर तेरी गौ जीवित रहेगी। अगर तुम चाहो तो करो, नहीं तो न करो।"

देवल इस चिन्ता और दुख में पर वापस आया। उसे लगा कि गौ को उसकी पहली पत्नी ने ही पकड़ रखा था। क्योंकि मैंने दुबारा शादी कर ली है, इसलिए मेरी गौ के प्राण ले रही है। अगर आनन्द की बलि दे दी, तो गौ तो जीवित रहेगी और पहली पत्नी कभी इस तरफ न फटकेगी। रोहिणी बड़ी अच्छी थी। पहली पत्नी के लिए रोहिणी की सन्तान को बलि देना उचित न था।

देवल ने सोचा, किसी भी तरह क्यों न किया जाय, आनन्द का बलि दिया जाना ही ठीक था। परन्तु वह काम करने के लिए उसकी अन्तरात्मा ने अनुमति न दी। क्योंकि पहली पत्नी के गुजर जाने के बाद उसने आनन्द को बहुत लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। रोहिणी ने उसके प्रेम को कम न करके और अधिक किया।

"क्या किया जाय? गौ मरती है तो मरने दो!" सोचते हुए देवल ने अपने घर में प्रवेश किया। उसे तब बीमार गौ

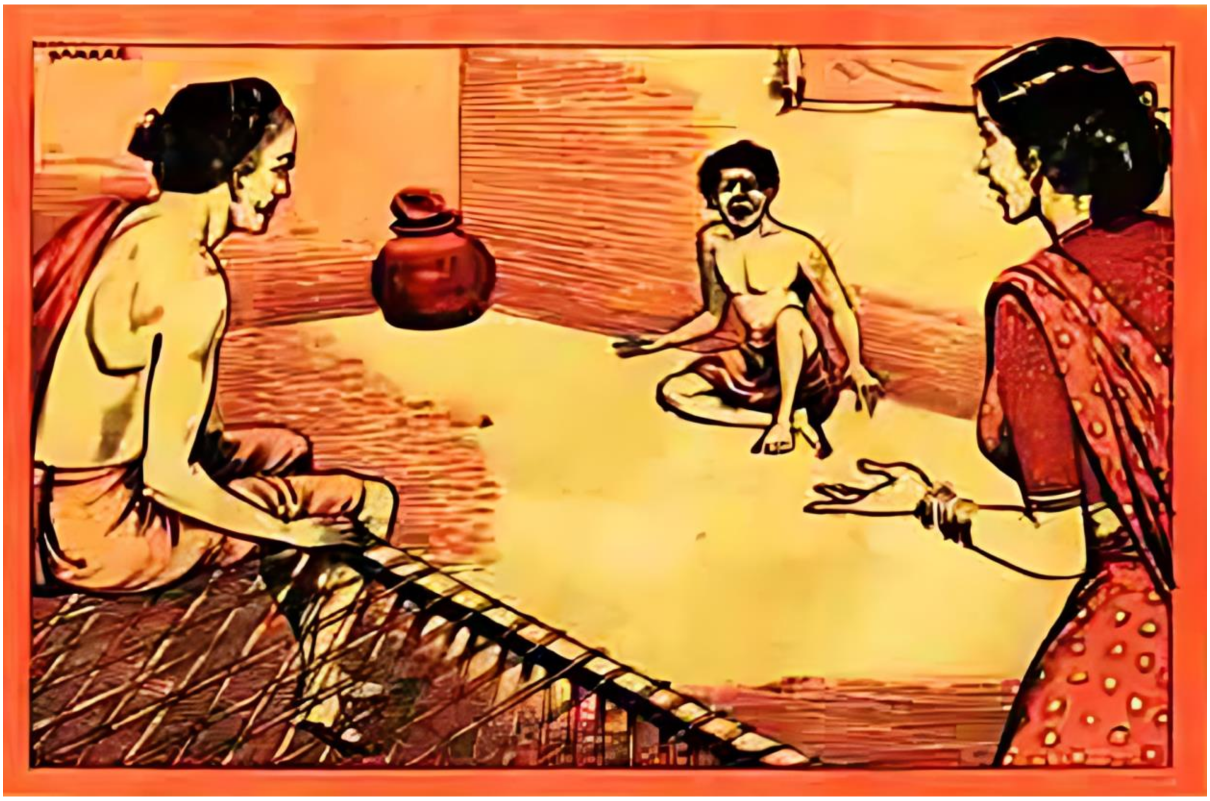


दिखाई दी। उसको देखते ही देवल का दिल बैठ सा गया। उसने तुरन्त निश्चय किया कि अगर हो सका तो बड़े लड़के को बलि देकर गौ के प्राण बचाऊँगा।

थोड़ी देर में तीनों बच्चे खेल कूदकर भोजन के लिए आये। देवल ने आनन्द को बुलाया। उसने सीधे उसकी आँखों में देखा, आनन्द ने छीङ्का। देवल के मन में आया कि कहे "जीते रहो"। पर उसने अपना मुख बन्द कर लिया।

उसने फिर आनन्द के आखो में देखा। उसने फिर छीङ्का। पिता ने उसे आशीर्वाद न दिया। परन्तु देवल को कोई भय सताने लगा। अगर उसने तीसरी बार आँखों में देखा, तो वह ही आनन्द की हत्या करनेवाला होगा। फिर भी उसने दिल को पत्थर बनाकर आनन्द की आँखों में देखा। आनन्द ने तीसरी बार भी छीङ्का।

ठीक उस समय वहाँ रोहिणी आयी। "जीते रही, चिरञ्जीवी हो।" उसने कहा। फिर यह अपने पति पर भी गुस्सा हुई-"उसने लगातार तीन बार छीङ्का और आपने एक बार भी आशीर्वाद न दिया?"



कुछ भी हो, रोहिणी के आशीर्वाद के कारण भूत वैद्य की बताई हुई चिकित्सा ने काम नहीं किया। आनन्द तो स्वस्थ रहा, पर गौ उसी दिन मर गई।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा-"राजा, मुझे एक सन्देह है। देवल गौ को बचाने के लिए अपने लड़के की बलि देने को क्यों तैयार हो गया? क्या इसलिए कि उसको अपने लड़के की अपेक्षा गौ पर अधिक प्रेम था? जब देवल अपने लड़के को मारने की कोशिश कर रहा था, तो सौतेली माँ रोहिणी ने आशीर्वाद देकर उसके प्राण क्यों बचाये? अगर तुमने जान-बूझकर इन प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

विक्रमार्क ने कहा-"अगर देवल लड़के की बलि देने को तैयार हो गया था तो इसको मतलब यह नहीं कि उसको लड़के पर कम प्रेम था और गौ पर अधिक। उसके दिल में यह बात बीन्ध रही थी कि वह अपनी पत्नी की आखिरी इच्छा पूरी न कर पाया था और उसने दूसरी शादी कर ली थी। देवल ने सोचा कि लड़के की बलि दे देने से यह गलती ठीक हो जायेगी। जिनको पापों का डर होता है, वे इसी प्रकार एक के बाद एक पाप करते चले जाते हैं। और रोहिणी का मन निर्मल था। इसलिए ही उसने आनन्द को आशीर्वाद दिया। पति-पत्नी के व्यवहार में परिवर्तन हुआ, वह उनके मन के भेद के कारण था, न कि उनके आनन्द के साथ सम्बन्ध के कारण।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन भङ्ग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो पेड़ पर जा बैठा।





एक देश में दो मित्र रहा करते थे। एक का नाम धर्मलाल था और दूसरे का दानवीर। दोनों अलग गाँव में रहा करते थे। धर्मलाल जिस गाँव में रहा करता था, उसके चारों ओर अच्छे-अच्छे खेत, बाग-बगीचे थे। परन्तु जिस गाँव में दानवीर रहता था, उसके चारों और पहाड़ ही पहाड़ थे। जमीन भी पथरीली थी।

एक बार धर्मलाल, दानवीर के पास आया। भोजन की समस्या थी, दानवीर, अपने अतिथि को साथ लेकर, कन्द-मूल खोदकर लाने के लिए पहाड़ पर गया। वे दोनों जब मूल खोद रहे थे, तो उनको एक सोने का कलश मिला।

आज हम पर भाग्य खुश हुआ है, इसे बेच कर जो कुछ मिलेगा उसे अगर आधा आधा बाँट लिया, तो हम दोनों की गरीबी जाती रहेगी।" धर्मलाल ने कहा।

परन्तु दानवीर ने चाहा कि वह कलश ले ले और उसे बेचने पर जो मिले, उसे स्वयं हड़प ले। उसने धर्मलाल से कहा-"मैं नहीं समझता कि यह कलश सोने का बना हुआ है। क्यों कोई सोने का कलश यहाँ पहाड़ पर गाड़कर रखेगा? कोई मिली मिलाई धातु मालूम होती है।"

धर्मलाल ने हँसकर कहा-"परख कर देखें। अगर सोना नहीं है तो हमारा भी क्या नुक्सान है। हमने उसको पाने की कोई खास कोशिश तो की नहीं है। हम कन्द-मूल खोद रहे थे कि मिल गया।"

फिर कलश लेकर दानवीर, मित्र के साथ अपने घर पहुँचा। अगले दिन



धर्मलाल ने अपने गाँव जाते हुए कहा-"क्यों, कब उस कलश को परखा जाये?"

"मेरे पास ही रहने दो। जब मौका मिलेगा तो इसे परखवालेंगे। अगर सोना निकला तो उसे बेच दूँगा और जो कुछ तेरे हिस्से में आयेगा, उसे लाकर दे दूँगा।" दानवीर ने कहा।

मित्र का विश्वास करके धर्मलाल अपने गाँव चला गया। उसके जाते ही दानवीर ने कलश पिघलवाया और उसका सोना बेच दिया। जो कुछ मिला, उसने अपने पास रख लिया। मित्र को खबर तक न भेजी।

जब बहुत दिनों तक दानवीर के पास से खबर न आई, तो धर्मलाल स्वयं उनको देखने गया। दानवीर ने कलश के बारे में कुछ भी न कहा।

"क्या उस कलश को किसी को दिखाया कि नहीं? आखिर वह है कहाँ?" धर्मलाल ने कहा।

"अरे हाँ, उसकी बात ही भूल गया। वह सोना ही नहीं है। मुझे तो शुरु से ही सन्देह था। आग में रखा था कि वह पिघल कर पानी हो गया। वह जरी का बना था।" दानवीर ने कहा।

धर्मलाल जान गया कि दानवीर झूठ बोल रहा था। जरी, सोने की तरह चमकती नहीं है। और अगर दानवीर नेक आदमी होता तो कम से कम उसे वह जरी ही दिखाता। परन्तु धर्मलाल ने यह न दिखाना चाहा कि उसे सच मालूम हो गया था। उसने कहा-"अरे, तो वह जरी थी, मैं तो इस ख्याल में था कि वह सोना था।"

वह उस दिन दानवीर के घर रहा। अगले दिन अपने गाँव जाते हुए उसने कहा- "देखो भाई, हमारे गाँव में

बगीचों में पेड़ फलों से लदे पड़े हैं। इस जगह तो कही फल दिखाई ही नहीं देते। तुम अपने लड़के और लड़की को मेरे साथ क्यों नहीं भेज देते? वे मजे से दिन भर फल खा सकते हैं। बाग में खेल कूद सकते हैं।"

दानवीर ने अपने लड़के और लड़की को धर्मलाल के साथ भेज दिया। उन्हें रास्ते में बन्दर दिखाई दिये। दानवीर के बच्चे, बन्दर और उनके बच्चों को देखते खड़े रहे। यह देख, धर्मलाल उनके लिए दो बन्दर के बच्चे पकड़कर घर लाया।

दानवीर के बच्चे धर्मलाल के घर में बड़े मजे में थे। जब घर में रहते तो वे बन्दरों से खेला करते। उन्होंने उनके नाम भी रखे। जब वे उनको नाम से पुकारते, तो वे जहाँ कहीं भी होते भागे भागे आते। जब वे घर में न होते तो बागों में फल खा रहे होते, बागों से आते आते वे चन्दरों के लिए भी कुछ फल तोड़ लाते।

इस तरह कुछ दिन बीतने के बाद दानवीर ने अपने बच्चों को देखना चाहा। दानवीर ने सोचा कि अगर वे वापस आना चाहेंगे तो उन्हें वापस ले आयेगा। उसने



धर्मलाल को खबर भेजी कि वह फलाने दिन उसके यहाँ आ रहा था।

उस दिन सवेरे ही धर्मलाल ने दानवीर के बच्चों से कहा-" तुम जाकर बाग में खेलो। भोजन के समय तक पर न आना।" वे दोनों चले गये।

सूरज चढ़ने के बाद दानवीर आया। साधारण कुशल प्रश्नों के बाद उसने अपने मित्र से पूछा-"मेरे बच्चे कहाँ हैं? दिखाई नहीं देते!"

"शायद कहीं खेल-कूद रहे हैं, बुलाता हूँ।" धर्मलाल ने दोनों को उनके नाम से बुलाया। बन्दरों को भी उन नामों से पुकारे जाने पर आने की आदत थी। इसलिए वे तुरन्त भागे भागे आये और धर्मलाल और दानवीर के कन्धों पर जा चढ़े। वे क्योंकि मनुष्यों के भी आदी थे इसलिए न कोई उनके लिए नया था, न कोई पुराना।

"यह क्या!" दानवीर ने हैरान होकर पूछा।

"ये तुम्हारे बच्चे हैं। मैं उन्हें यहाँ लाया और वे इस तरह बदल गये और मुझे स्वयं इस परिवर्तन का कारण मालूम नहीं है।" धर्मलाल ने कहा।

दानवीर को अक्ल आ गई। उसने अपने मित्र के हाथ पकड़कर कहा- "धर्मलाल! लालच में मैने उस कलश के बारे में तुमसे झूठ कहा था। वह सोने का कलश ही था। तुम मेरे बच्चे मुझे दे दो। मैं कलश में आधा हिस्सा तुम्हें दूँगा।

धर्मलाल ने कहा-"तुम्हारा ख़याल था कि मैं तुम्हारे बच्चों को हथिया लूँगा? अभी बुलाकर लाता हूँ।" वह बाग में जाकर बच्चों को साथ ले आया। दानवीर बच्चों को अपने साथ ले गया। कलश बेचकर उसने आधा हिस्सा धर्मलाल को भेज दिया।





घर वापस आते हुये जीवक साकेत नगर पहुँचा। उस नगर के एक प्रमुख व्यक्ति की पत्नी सात वर्ष से सिर दर्द से पीड़ित थी। कितने दी वैद्यों ने विश्वास दिलाया कि ये उसका सिर दर्द ठीक कर देंगे। कितनी ही औषधि दी गई.... कितना ही धन उन्होंने लिया, पर सिर दर्द कम नहीं हुआ।

जीवक को यह सब मालूम हुआ। उसने उस स्त्री के पास जाकर खबर भिजवाई कि वह एक बड़ा वैद्य था और उसकी चिकित्सा कर सकता था। वैद्य की आयु के बारे में मालूम होते ही उस स्त्री ने कहा-"बड़े बड़े वैद्य जिस बीमारी को ठीक नहीं कर पाये है यह छोकरा क्या ठीक करेगा? उसे भेज दो।"

यह सुन जीवक ने कहा-"ज्ञान के लिए बचपन और बुढ़ापा क्या है? क्या सब बूढ़े ज्ञानी हो जाते हैं? इनको मेरी चिकित्सा से मतलब है न कि मेरी आयु से। मैं उनका सिर दर्द ठीक किये बगैर नहीं आऊँगा। अगर मेरी चिकित्सा सफल न हुई तो उनका कुछ नहीं जाता, क्योंकि मैं तब तक कुछ न लूँगा जब तक



उनकी बीमारी ठीक नहीं हो जाती।" जीवक ने फिर कहला भेजा। यह सुन वह स्त्री प्रसन्न हुई। उसने जीवक को बुला भेजा।

"सात वर्ष से मैं नींद नहीं जानती। कम से कम एक दिन के लिए तो मेरा यह सिर दर्द हटा दो।"

"मैं आपका दर्द एक घड़ी में हटा दूँगा। जरा कुछ मक्खन पिघलवाइये।" जीवक ने कहा। पिघले हुये मक्खन में उसने कोई औषधी डाली और उसे उसकी नाक में डाल दिया। उस औषधी का कुछ भाग मस्तिष्क में गया और कुछ गले में। जो दवा गले में गई थी, उस स्त्री ने थूक दी। तुरन्त उस के पति ने अपने नौकरों से कहा-"इस दवा को कपड़े पर ले लो।"

"जो नीचे पड़ी दवा को उठाकर रखे, ऐसा कञ्जूस मेरा पारिश्रमिक क्या देगा!" जीवक ने मन ही मन सोचा।

उसकी मन की बात ताड़ कर उस स्त्री ने कहा-"बेटा, तुम अन्यथा न समझो। हमने दवा को लालच के कारण नहीं उठाया है, बल्कि इसलिए कि हम तुम्हारी दवा का आदर करते हैं। सचमुच यह अमूल्य औषधी है। इससे मेरा सिर दर्द हट गया है।"

यह सुन पास खड़े सम्बन्धियों और नौकरों के सन्तोष का ठिकाना न रहा। उस स्त्री ने व उसके पुत्र सम्बन्धियों ने चार चार हजार मुहरें और बहुत से उपहार जीवक को दिये।

ये सब लेकर जीवक राजगृह पहुँचा। उसने अभय से कहा-"आपने बहुत से कष्ट झेलकर मुझे पाला पोसा, बड़ा किया। उसके बदले में यह सब ले लीजिये।"

कहकर उसने अपनी पहली पहल आय उसको देनी चाही।

अभय ने उससे कहा-"बेटा, अभी हाल में पता लगा कि तुम सालावती से मेरे ही लड़के हो। तुम्हें पालने पोसने के बदले में मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम मेरी सम्पति के उत्तराधिकारी होकर मेरे महल के पास ही एक अपना महल बना लो।"

कुछ समय बाद महाराजा बिम्बसार को एक फोड़ा हुआ। कई ने कई प्रकार की चिकित्सा की। पर वह फोड़ा न गया। यह जानकर अभय ने अपने पिता से कहा-"मेरा लड़का बड़ा अच्छा चिकित्सक है, क्यों नहीं उससे चिकित्सा करवाते?"

बिम्बसार ने एकान्त में ले जाकर जीवक को अपने फोड़े के बारे में बताया। जीवक ने अपने नाखून से कोई लेप लिया और उसे उनके त्वचा के फोड़े पर लगाया। तुरत महाराजा का दर्द कम हो गया। फोड़ा भी ठीक हो गया।

इस अद्भुत चिकित्सा पर महाराजा बिम्बसार विश्वास न कर सका। इस



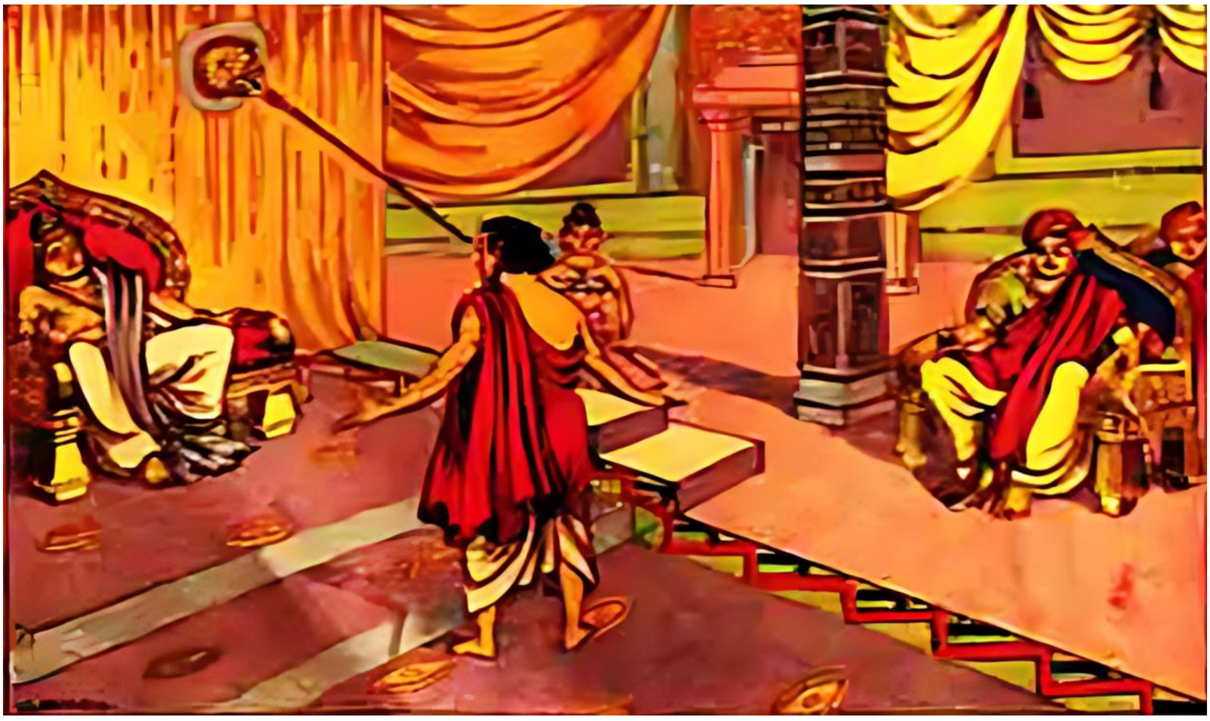
प्रकार की विद्या जिसके हाथ में हो, अगर वह सज्जन हो, तो देश के लिए कितना ही उपकरी हो सकता है, अगर दुर्जन हो, तो अपकारी हो सकता है। महाराजा ने यह जानना चाहा कि वह सज्जन है कि दुर्जनः।

उसकी परीक्षा लेने के लिए उसने अपनी पाँच सौ रानियों को बुलाया और उनके समक्ष उसने जीवक की प्रशंसा की और कहा-"इसका उचित सत्कार करो।" उन्होंने बहुत से कपडे लाकर जीवक को दिये। यह देखकर अभय आदि को लगा कि कही जीवक न ले ले।

परन्तु जीवक समझदारी में किसी से कम न था। उसने रानियों से कहा-"ये राजोचित मेरे लिये क्यों? मैं साधारण नागरिक हूँ। मुझे आराम से रहने दीजिये। यही मेरे लिये काफी है।" यह सुन महाराजा और रानियाँ बहुत सन्तुष्ट हुई। महाराजा ने उसके नाम बहुत से बाग, गाँव आदि लिख दिये ताकि उनकी आमदनी से वह सुख-पूर्वक जीवन निर्वाह कर सके।

राजगृह में एक कुलीन धनी को सिर दर्द हुआ। दो वैद्यों ने उसकी परीक्षा की। उन्होंने कहा कि उस रोग की कोई चिकित्सा न थी और उस रोग के कारण उसकी मृत्यु भी होनेवाली थी। उनमें से एक ने कहा कि एक सप्ताह में उसकी मौत दोगी, दूसरे ने कहा कि पाँच दिन में।

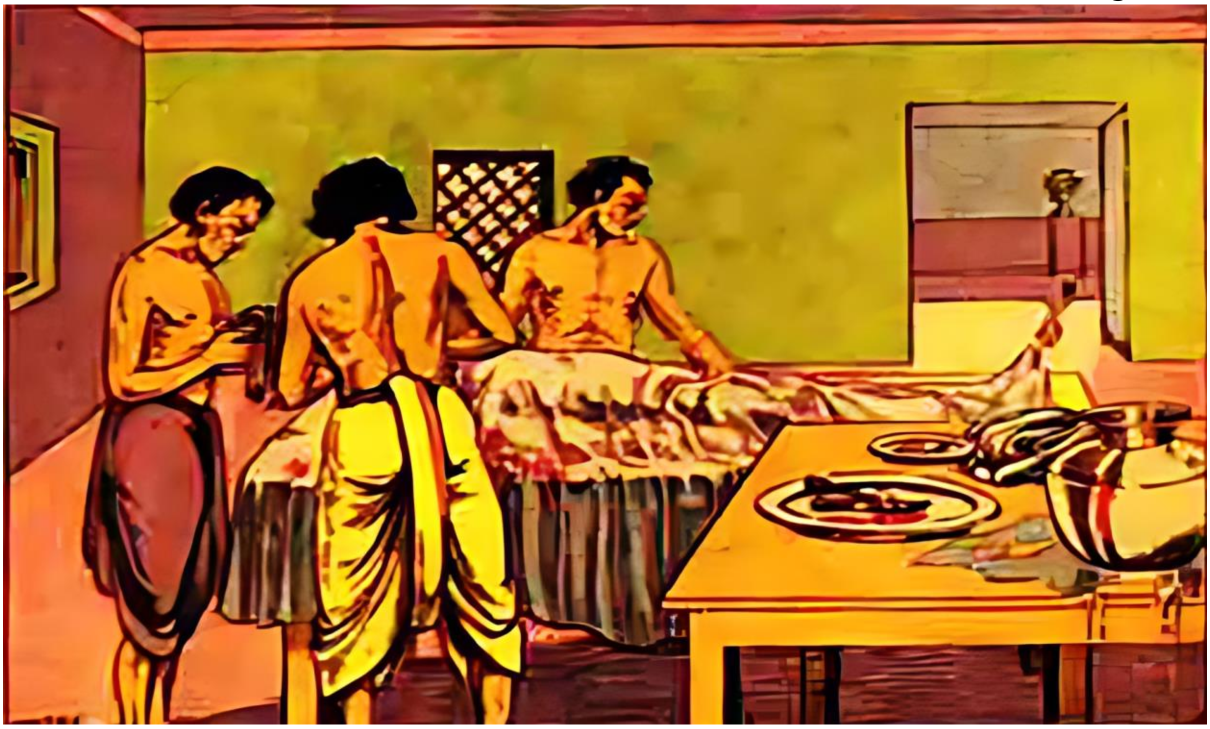
क्योंकि वह कुलीन राजगृह के लिए बहुत मुख्य था, इसलिए महाराजा बिम्बसार भी उसके रोग के बारे में चिन्तित था। उसने जीवक को बुलाकर उस कुलीन की चिकित्सा करने के लिए कहा। जीवक ने जाकर रोगी को देखा। "इस रोगी के सिर में दो कीड़े हैं, एक बड़ा और दूसरा

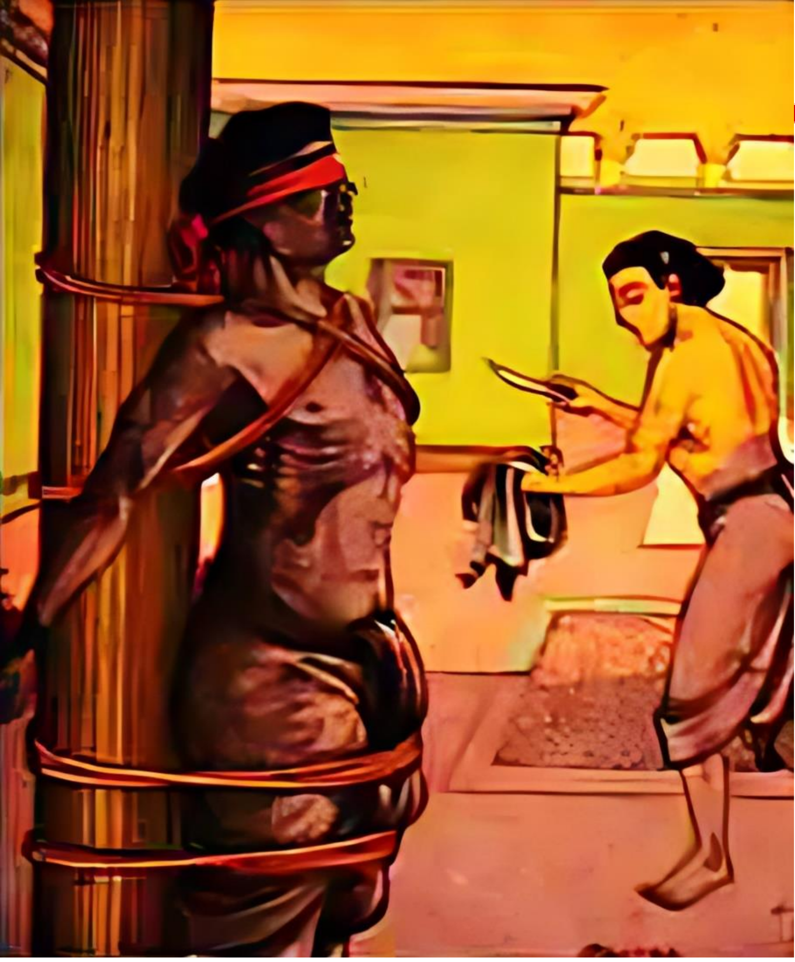


छोटा। बड़ा पाँच दिन में मार देगा और छोटा सप्ताह में। जिन वैद्यों ने इनकी परीक्षा की थी, वे एक एक कीड़े के बारे में ही जान सके। फिर भी कोई भय की बात नहीं है। मैं इस रोग को ठीक कर दूँगा। परन्तु इसके लिए दो शर्त है। एक यह कि चाहे मैं कितना ही दर्द दूँ, सहना पड़ेगा। आपका अन्त में लाभ ही होगा। और दूसरी शर्त यह है कि चिकित्सा के बाद इक्कीस महीने बिना हिले डुले लेटे रहना होगा। अगर ये दोनों शर्ते आप मान लें तो मैं चिकित्सा करने के लिए तैयार हूँ।"

कुलीन तुरन्त इसके लिए मान गया, वह तो आनेवाली मृत्यु के कारण भयभीत था। जीवक रोगी को उसले मञ्जिल के कमरे में ले गया। वहाँ उसने तेज उपकरण से रोगी का सिर काटा, और उसमें से दो कीड़े निकाले, फिर सिर को यथापूर्व सी दिया।

इस शल्य चिकित्सा में आश्चर्यजनक बात यह थी कि चिकित्सा के पूर्ण होने के बाद यह कोई न जान सका कि सिर को काटा गया था, और कहाँ सिया गया था। रोगी का दर्द भी जाता रहा। "मैने इक्कीस महीने लेटने के लिए कहा था, परन्तु अब





इक्कीस दिन काफी हैं।" जीवक ने कुलीन से कहा।

कुलीन ने जीवक को बहुत सा धन देना चाहा। परन्तु जीवक ने उसे न लिया। उसने राजा से एक लाख, उस अमीर से एक लाख मुहरें और उपहार ही लिए। जीवक की स्वाति जम्बू द्वीप में सर्वत्र फैल गई।

काशी नगर में एक कुलीन रहा करता था। वह बचपन में जब खेल कूद रहा था तो उसके पेट की एक आँत लिपट-सी गई। तब से वह साधारण भोजन न कर पाता, मल विसर्जन न कर पाता, द्रव पदार्थ पीता अपने प्राण बचाये हुए था। पर बहुत कमजोर हो गया था। उसकी चिकित्सा करने के लिए दूर दूर से वैद्य आते। उसकी परीक्षा करते, और यह कहकर चले जाते कि उसकी चिकित्सा उनके बस की बात न थी।

रोगी का पिता, जीवक की प्रसिद्धि से परिचित था। अच्छे अच्छे उपहार लेकर वह राजगृह गया। महाराजा बिम्बसार के दर्शन करके उसने उससे प्रार्थना की-"महाराज! मेरे लड़के की चिकित्सा करने के लिए कृपया जीवक को भिजवाइये।"

बिम्बसार के आदेशानुसार जीवक ने काशी जाकर रोगी को देखा- "क्या यह बीनारी तब हुई है, जब रोगी खेल कूद रहा था, या तब जब कि वह बहुत मेहनत कर रहा था? क्या कभी ऐसा लगता है, जैसे किसी ने आँतों की गाँठ-सी बाँध दी हो?" जीवक ने रोगी से पूछा। रोगी ने दोनों प्रश्नों के उत्तर में हाँ कहा।

जीवक ने सब को कमरे में से जाने के लिए कहा। रोगी को एक स्वम्भे से बाँध दिया। उसके मुँह को ढक दिया। फिर एक तेज उपकरण से उसका पेट काटा। आँत बाहर निकाल उसे ठीक करके

तथास्थान रख दिया। पेट को सी दिया। ऊपर कुछ लेप पोत दिया। तीसरे दिन रोगी साधारण व्यक्ति की तरह घूमने-फिरने लगा।

जीवक को इस चिकित्सा के कारण सोलह हजार मुहरे, कितने ही पोडे, रथ गौवें दास दासियाँ आदि मिली। उन सबको लेकर वह राजगृह वापस आया। उसके बाद कई देशों से लोग जीवक के पास चिकित्सा के लिए आने लगे।

उन दिनों उज्जयिनी का राजा, गण्ड प्रद्योत था। उसे पीलिया हुआ। उसने बिम्बसार राजा को भेंट भेजकर निवेदन किया कि वह उसकी चिकित्सा के लिए जीवक को भेजे। परन्तु विम्बसार के बहुत कहने पर भी जीवक न गया।

इसका कारण था। उज्जयिनी के राजा की चिकित्सा बिना तेल के सम्भव न थी। परन्तु उस राजा को तेल किसी भी रूप में, किसी भी मात्रा में पसन्द न था। भोजन में तेल नहीं होना चाहिए था। शरीर पर तेल नहीं लगने देता था। और तो और तेल के दीये भी उस राजा को पसन्द न थे। इसलिए जीवक ने उसकी चिकित्सा न करने का निश्चय किया।



परन्तु उज्जयिनी का राजा, बिम्बसार के पास खबर पर खबर, उपहार पर उपहार भेजता जाता था। आखिर जीवक, बिम्बसार को न न कर सका। वह उज्जयिनी गया। राजा को बिना बताये ही उसने उसकी चिकित्सा करने की सोची। अगर उसको बता दिया गया कि क्या औषधी दी जा रही थी, उससे रोगी पर और उस पर बिपत्ति आ सकती थी।

"महाराज, मैं चिकित्सा करूँगा। पर यह न बताऊँगा कि मेरी औषधी क्या है। यही नहीं, जड़ी-बूटियों को खोजने के लिए नगर से बाहर आने जाने की सब सुविधायें दी जायें, मैं तभी चिकित्सा करूँगा।"

राजा के पास चार तरह के बाहन थे- पालकी, एक हाथी, एक खबर और एक घोड़ा। राजा ने आज्ञा दी कि इनमें से किसी का भी जीवक यथेच्छा उपयोग कर सकता था। जीवक ने उन सब पर चढ़कर खूब घूम घाम कर बहुत-सी जड़ी बूटि इकट्ठी की। उन बूटियों को तेल में उबाल कर औषधी तैयार की।

राजा के पास जाकर उसने कहा- "महाराज! औषधी तैयार हो गई है। देरी की तो इसका असर जाता रहेगा, इसका स्वाद देखने का समय नहीं है। तुरन्त इसे पी लीजिए।"

राजा ने एक हाथ से नाक बन्द कर दूसरे से दबाई गले में उड़ेल ली।

उस समय जीवक बिना किसी को कहे सीधे हस्तिशाला गया। वहाँ भद्रावती नामक हाथी पर सवार हो बहुत तेजी से निकल पड़ा। वायुवेग से वह कोशाम्बी नगर पहुँचा और वहाँ उसने बिश्राम किया।

(अभी है)





अनुकूल पत्नी

एक ग्राम में एक किसान रहा करता था। उसकी पत्नी को उस पर बहुत अभिमान था। चाहे वह कुछ भी करे, उसकी पत्नी को यह अच्छा ही लगता। उनके पास काफी जमीन थी और दो गोवे भी थीं। इसलिए वे सुख-चैन से जिन्दगी बसर कर रहे थे। किसान की पत्नी ने सौ रुपये भी जमा कर लिए थे। उसने एक दिन अपने पति से कहा- "एक गाय हमारे लिए काफी है। गाय हो, तो दुनियाँ भर के काम उसके लिए करने होते हैं। इसलिए दूसरी गौ बेच आइये। अपने सौ रुपये छुए बगैर त्योहार के लिए हाथ में काफी पैसा आ जाएगा।"

किसान इसके लिए मान गया और एक दिन अपनी एक गौ लेकर शहर गया। उसने गौ बेचने की बहुत कोशिश की। परन्तु गौ बिकी नहीं। "न बिके तो न बिके। हमारी गौ हमारे पास रहेगी। क्या हो गया।" यह सोच किसान गौ को फिर घर हाँककर ले जाने लगा।

रास्ते में उसे एक आदमी मिला, जो एक घोड़ा ला रहा था। किसान ने उस आदमी को अपनी गौ दी और उसका घोड़ा ले लिया। घोड़ा लेकर वह आगे बढ़ा।

थोड़ी दूर बाद उसको एक आदमी मिला, जो बकरी ला रहा था। किसान ने उसको घोड़ा दे दिया और उसकी बकरी ले ली। बकरी लेकर वह आगे बढ़ा।

कुछ दूर और गया था कि एक आदमी बतख लेकर चला आ रहा था। किसान ने उसको बकरी दे दी और उसकी बतख लेकर वह आगे बढ़ा।

थोड़ी दूर और जो गया, तो उसने एक आदमी देखा, जो मुरगा लिए चला आ रहा था। किसान ने उसको बतख दे दी और उसका मुरगा ले लिया।

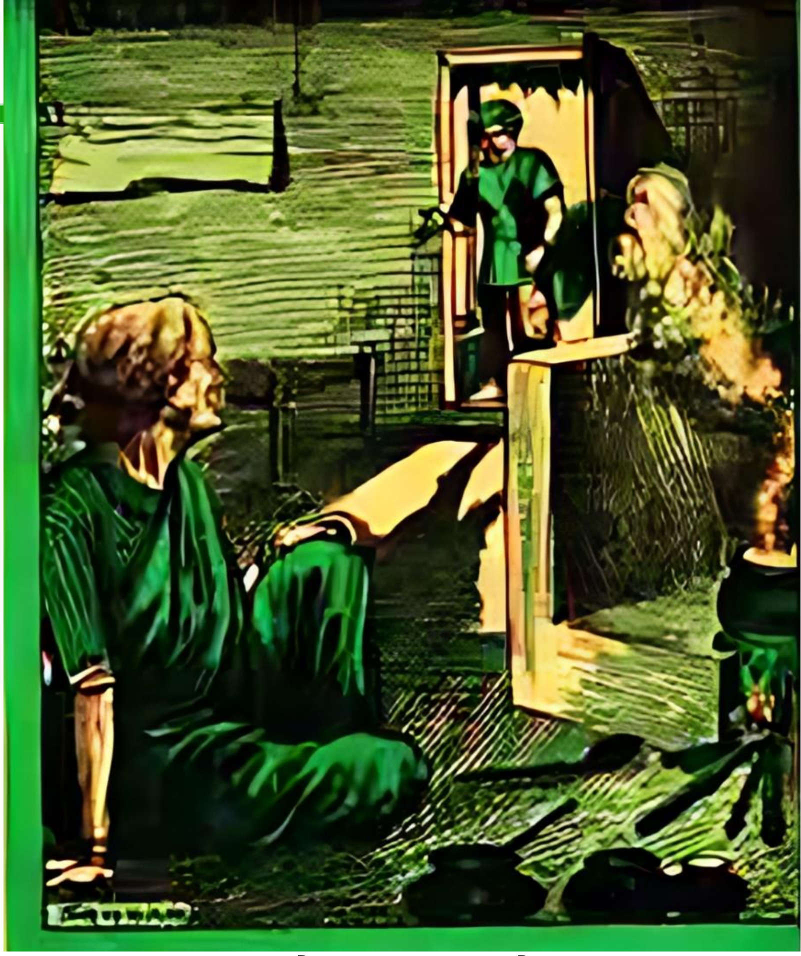
किसान को अभी बहुत दूर जाना था। उसे भूख सता रही थी। इसलिए रास्ते में उसने एक स्त्री को वह मुरगा देकर पेट भरकर खाया खाना खाकर खाली हाथ वह गाँव पहुँचा।

किसान के एक पड़ोसी ने पूछा-"सुना है कि शहर गये थे, अच्छा सौदा पटाकर आये हो न!" किसान ने पड़ोसी को यह सब बताया, जो उसने किया था। फिर पूछा-"जो कुछ मैंने किया है. क्या गलत किया है?"

"गलत! अरे, बहुत गलत। देखते रहो, जो तुमने किया है, उसको लेकर तुम्हारी पत्नी कितना झगड़ा करती है।" पड़ोसी ने कहा।

"मेरी पत्नी लड़नेवाली नहीं है।" किसान ने कहा।

"भले ही बहुत नादान हो, पर आज तुमने जो किया है, उसे जानकर वह



इतना हल्ला करेगी कि तुम्हारे घर की छत भी उड़ जायेगी।" पड़ोसी ने कहा। दोनों ने शर्त लगाई।

"मेरे पास सौ रुपये हैं। मेरी स्त्री मेरी नुक्ताचीनी नहीं करेगी, सौ रुपये शर्त रही। और तुम?" किसान ने पूछा ।

"वह तुम से लड़ेगी, लड़कर रहेगी। सौ रुपये की शर्त रही।" पड़ोसी ने कहा।

"तो तुम मेरे साथ आओ और बाहर खड़े होकर हमारी बातचीत सुनो।" किसान ने कहा। वह पड़ोसी को बाहर बिठाकर अन्दर गया।

"जी, आ गये! क्या गाय विक सकी?" किसान की पत्नी ने पूछा।

"किसीने नहीं खरीदी। इसलिए उसे देकर एक घोड़ा खरीदा।" किसान ने कहा।

"अच्छा किया, अगर हमने एक गाड़ी खरीद ली, तो हम जहाँ जाना चाहेंगे, वहाँ जायेंगे।" पत्नी ने कहा।

"घोड़ा लाया नहीं। उसे देकर एक बकरी ली।" किसान ने कहा।

"वह भी अच्छा है। घोड़े का खर्च हम नहीं उठा सकते, बकरी को तो बिना दमड़ी खर्च किये चराया जा सकता है। बकरी कहाँ है?" पत्नी ने पूछा।

"ठहरो भी, बकरी देकर मैंने बतख ले ली।" किसान ने कहा।

"बहुत अच्छा किया। बकरी के पीछे चलती चलती में मर जाती।" पत्नी ने कहा।

"उस बतख को देकर मुरगा लिया।" किसान ने कहा।

"मैं यह कहनेवाली थी कि मुरगा ही अच्छा होता, क्योंकि वह सवेरे बाँग देकर हमें उठाता।" किसान की पत्नी ने सन्तुष्ट होकर कहा।

"पर क्या हुआ कि रास्ते में मुझे भूख सताने लगी। इसलिए उस मुरगे को एक के घर देकर मैने पेट भर खाया।" किसान ने कहा।

"अच्छा किया, कमवख्त मुरगा क्या आपके प्राणों से अधिक है!" पत्नी ने कहा।

किसान ने बाहर आकर पड़ोसी से पूछा-"सुनी न हमारी बातचीत?"

"सुनी, सुनी। हमारे घर आकर शर्त के सौ रुपये ले जाओ।" पड़ोसी ने कहा।

पत्नी क्योंकि उसके अनुकूल स्वभाव की थी इसलिए वह गौ के दान से दुगना पा सका।





बुद्ध चरित्र